सम्पादक - प्रकाशक :
गोस्वामी श्याम मनोहर
६३, स्वस्तिक सोसायटी, ४ था रस्ता, जुहुस्कीम,
पारले (पश्चिम), मुंबई ४०० ०५६ फोन : (०२२) २६१४४३२६

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट (मांडवी-कच्छ) द्वारा आयोजित
"पुष्टिभक्तिमार्गीय साधनाप्रणाली" विषयक
सङ्गोष्ठीमें दिया गया अध्यक्षस्थानीय वक्तव्य
(दिनाङ्क : १० / ९ / २००२)

आयोजककी सम्मतिसे साभार प्रकाशित

नि:शुल्कवितरणार्थ
मिलनभाई, अहमदाबाद के द्रव्य सहयोग से प्रकाशित
प्रथम संस्करण : वि.सं. २०६० **प्रति :** २०००

मुद्रक :
श्रीवल्लभ बुक मेन्युफेक्चरिंग् कं.,
सिटिमील कम्पाउंड्, कांकरीया रोड़, अमदावाद, गुजरात.

कृष्णएव तात्पर्यम् !

गोस्वामी श्याम मनोहर

सामान्यतया अध्यक्षपदीय वक्तव्य समापनके समय कियो जाय है. परन्तु मैं मेरी कठिनाई आपकु बताउं तो वो ये है के मैं जो अध्यक्षीय वक्तव्य देनो चाहतो हतो वाको २५ प्रतिशत् अंश प्रतीकने मेरे मुंहसुं झूंटके अपने पेपरमें डाल दियो है. अब मेरी समस्या ये है के मैं बोलूं तो क्या बोलूं!

दूसरी बात ये है के बच्यो भयो अंश बड़ो विकट है. और वाके बारेमें मैं आवते वर्ष श्रीमहाप्रभुजीके प्राकट्योत्सवपे "अङ्गीकृत्यैव गोपीशवल्लभीकृतमानवो, अङ्गीकृतौ समर्यादो" नामनके विवेचनके अवसरपे समझानो चाहतो हतो. उन नामनको सविस्तार विवेचन या छोटे सत्रमें कियो नहीं जा सके है और यदि नहीं करूं तो यहां अभी जा प्रश्नपे अपन चर्चा कर रहे हैं उनको खुलासा हो नहीं सके है.

जबसु ये चर्चा उठी, खास करके मैं भूषणबावाकी ओर इशारा करनो चाह रह्यो हूं, तबसु मोकुं सफोकेशन् हो रह्यो है के अब करनो क्या! वा विषयकु यहां छेडुं तो विषयके साथ न्याय नहीं हो सकेगो और नहीं छेडुं तो प्रश्नके खुलासा नहीं हो रहे हैं. कल रसिकभाईके पेपरके बखत सबनकु ऐसी अनुभूति भई होयगी के मैंने वा विषयकुं साईड-ट्रेक् करवेकेलिये बीचमें कछु ओर बात कह दी. ऐसी के जो पेपरसु कनेक्टेड् नहीं हती. पर फिरसु मैं मेरी तकलीफ बताऊं के जिन प्रश्नको समाधान एक पूरी भूमिकाकी अपेक्षा रखे है वो भूमिका जब तक स्पष्ट नहीं कर लें तब तक

अपन कितनो भी सिर फोड लें उन सारी बातनूको खुलासा हो नहीं सके है. और मेरेमें इतनो वक्तृकौशल्य नहीं है के इतने थोड़ेसे समयमें मैं वाकु सारके रूपमें आपकु समझा सकुं. क्योंके यदि उन फंडामेन्टल् प्रिन्सिपल्सकुं अपन समझे नहीं तो दो-चार दिन क्या चार महीना भी डिस्कस् करते रहें तो भी याको सोल्युशन् आ नहीं सके है. बातें कड़वी होंय के मीठी होंय वासुं मोकुं कोई फर्क नहीं पड़े है. क्योंके करेलाको स्वाद बहुत अच्छो होवे है, कोईकु नहीं लगतो होयगो पर मोकुं तो अच्छो लगे है. और मीठेको भी स्वाद उतनो ही अच्छो लगे है. अपने यहां तो नये सालके दिन प्रिपेरेशन् ही ऐसी होवे है के कड़वो नीम और मीठी मिश्री खाके अपन अपने आपकु आनेवाले पूरे सालकी सारी कड़वाहट और मिठास केलिये तैयार रखे हैं. वो कड़वाहट चाहे तो, असितके शब्दनूमें, अरसिक साक्षिताकी होवे या रसिक असाक्षिताकी होवे! जैसी भी कड़वाहट/मिठास होवे वो पार्ट ऑफ् द गैम् है. वाकु जब अपन एज् ए गैम स्वीकारने तैयार नहीं होंय तो "पुष्टिमार्ग तोसों निभेगो नाहीं तासों तोकों पुष्टिमार्गमें नाहीं लेत हों" ऐसे श्रीमहाप्रभुजी कहनो चाहेंगे ही. या बातपे अपनकु ध्यान देनो चहिये.

अङ्किताने अहन्ता-ममता (अ.-म.)को विषय माइक्रो-बायोलॉजि की दृष्टिसु लियो है और प्रतीकने वाको दार्शनिक और भक्तिमार्गीय पक्ष लियो है. दोनोनूने एक-दूसरेके पूरक आलेख लिखे हैं.

प्रतीकने अपने आलेखमें अ.-म.कु बहुत ही अच्छी तरहसु और ड्रामेटिकलि इन्ट्रॉड्यूस् कियो है. प्रतीक कह रह्यो है के अ.-म.के बारेमें मैं कुछ भी बोलनेसु पहले वो खुद क्या है ये अपनेकु बतानो चाहे है. कैसे बता रह्यो है?: "मेरो नाम प्रतीक शाह है..." यों वो कह रह्यो है. वाने जो अपनो परिचय दियो है वामें कुछ वाकी अहन्ता है और कुछ वाकी ममता. अपन समझ सके हैं

के कहां अहन्ता है और कहां ममता है. वो कहे है के अहन्ता मेरी परिभाषा है और ममता मेरे इर्दगिर्दकी वस्तूनुकु परिभाषित करे है. ये दोनों निर्दोष हैं. कोई भी चेतन प्राणीमें या तरहकी वृत्ति रहेगी ही के वो अपने आपकु समझावेकेलिये अहन्ताको आश्रय लेगो और अपनेसुं अलग वस्तूनुकुं समझावेकुं वो ममताको सहारा लेगो.

खैर, भगवद्गीतामें "काम एषः क्रोध एषो रजोगुणसमुद्भवो, महाऽशनो महापाप्मा विद्धचैनम् इह वैरिणम्" या वचनमें भगवान्ने बड़ो भारी काउन्टर् बोम्बार्डमेन्ट् या अ.-म.के विस्फोटपे कर रख्यो है. भगवान् कहे हैं के रजोगुणसु पैदा होते काम-क्रोध तुम्हारे सबसुं बड़े शत्रु हैं. यहां एक बात ध्यानसुं समझियो के श्रीमहाप्रभुजीकी पदार्थमीमांसामें अहङ्कार खुद रजोगुणसमुद्भव है. गीताके श्लोकको मजा लेनो होय तो देखो के ठाकुरजी भी कहांसुं सारी बात इन्ट्रॉड्यूस् कर रहे हैं के "काम एषः क्रोध एषो रजोगुणसमुद्भवः". रजोगुणसुं समुद्भूत भी काम-क्रोध होवे हैं. यहां अर्थापत्तिद्वारा बाय इम्प्लिकेशन् ये भी तो समझमें आ सके है के कुछ काम-क्रोध ऐसे भी हो सके हैं के जो रजोगुणसमुद्भव नहीं होंय. कुछ काम-क्रोध ऐसे भी हो सके हैं के जो तमोगुणसमुद्भव होंय. और जब अपन इतनो सोच सके हैं तो ये सोचवेमें भी कोई तकलीफ नहीं होनी चहिये के कुछ काम-क्रोध ऐसे भी हो सके हैं के जो गुणसमुद्भव भी नहीं होंय अर्थात् निर्गुण काम-क्रोध होंय. भगवान्की वाक्यावलीको न्युएन्स् समझवेको प्रयास करो तो या बातकी खुबसुरती समझमें आयगी. भगवान् केह रहे हैं के रजोगुण समुद्भव जो काम-क्रोध है वो तुम्हारो सबसु बड़ो दुश्मन है. ये ही सबसु महान् पापरूप हैं. इनसुं तुम सावधान रहो.

भगवान्की या व्याख्यासुं ये बात सरलतासुं समझमें आ सके है के अ.-म. अपनकुं कोई विनाशक मोड़ तक भी पहुंचा सके

हैं. क्योंके भगवान् अपनी अ.-म.सुं प्रकट होवेवाले काम-क्रोधकी जब इतनी सख्त निन्दा कर रहे हैं तो इनमें अवश्य ही अपने विनाशके बीज रहे भये होने चहियें. अ.-म.के दोष होवेके बारेमें प्रतीकने बहुत अच्छो शब्द वापर्यो है सीमींगलि इनोसॅन्ट्. अर्थात् अ.-म. दिखलाई ऐसे देवे है के जैसे ये दोनों बहुत भोली होवें. जैसे बच्चा चोकलेट्केलिये ललचातो होवे तब बच्चासुं अपन जो कबूल करवानो चाहें वो चोकलेटकी लालच देके कबूल करवा लेवे हैं. यहां बच्चाकी लालसा बड़ी भोली है. पर गवर्न्मेन्ट् ऑफिसर् कोई काम करवेकेलिये जो चोकलेट अपने पाससु मांगे तो वामें वाकी जो लालच है वो सोसाईटीको कबाड़ा करवेवाली है. एक बात सच है के यदि बच्चाकु चोकलेट दे-देके काम करवावेकी आदत नहीं डाली होती तो वो गवर्न्मेन्ट ऑफिसर बनवेपे काम करवेकेलिये अपने पाससुं क्यों पेटी या खोखा मांगतो! अब अपन दुःखी होवे हैं के सरकारमें भ्रष्टाचार व्याप्त है. तो देखो जो सीमींगलि इनोसॅन्ट् अ.-म. है वो अन्ततः व्यवहारमें जाके कैसी भयङ्कर हो गयी! वो अपनकुं आपत्तिजनक हो जाय हैं, सारी राष्ट्रकी विनाशक हो जाय हैं, और दुनियामें जो भी कबाड़ा हो रहे हैं वो उन भोली वृत्तिन्मेंसुं ही जो कुटिलता प्रकट होवे है वाके हैं. तो या तरहसुं अपनो भोलोपन अन्तमें कुटिलतामें विकसित हो जाय है. ये बात प्रतीक अपने पेपरमें कह रह्यो है के जब अपन अपनी अहन्ताको अनियन्त्रित विकास होवे देवें हैं तब वो क्रोधमें विकसित होवे है. और अनियन्त्रित ममताको विकास काममें हो जाय है. और याकी ही भगवान् निन्दा कर रहे हैं.

यहां एक बात ध्यानसुं समझो के शुभ या अशुभ कोई भी चीजको अनियन्त्रित विकास नुकसान पहुंचावेवालो होवे ही है. यापे साहिर लुधियानवीको एक बहुत अच्छो शेर याद आ रह्यो है "यह ज़िंदगी जिस तरहसे संवारी गई, ज़िंदगीकी तलब ही बढ़ाई गई,

आईनेसे बिगड़के बैठ गये, जिनकी सूरत उन्हें दिखाई गई." वो कहे है के अपनी ज़िंदगीको निर्माण या घटन ही या तरहको है के वामें जीवनकी ललक बढ़ाई गई है. जैसे बच्चा जब छोटो होवे तब वो मांको जो दूध पीतो होवे है वो वाकुं मांको दूध अवश्य ही मीठो लगतो होयगो. बच्चा छोटो होवे है तब वो दूधको स्वाद बता नहीं पावे. ये ओर बात है के बड़े होवेपे वाको स्वाद वाकुं याद भी नहीं रह जावे. पर निश्चित समझो के मांके दूधमें एक तरहकी मिठास होती ही होयगी. शारीरिक विकासकेलिये बच्चाकु चीनीकी बहुत जरूरत होवे है. यालिये हर छोटे बच्चाकुं मीठो स्वाद बहुत भातो होवे है. जब मांको दूध पीनो बच्चा छोड़ देवे है तब बाहरको दूध पिवावेकेलिये अपन वा दूधमें शक्कर डाल-डालके दूधके बारेमें वाकी आदत बिगाड़ दे हैं. बादमें बिना शक्करको दूध बच्चाकुं फीको लगने लग जाय है. यहां तक कोई हरकत नहीं है. मिठासकी ललक तो इनोसॅन्ट् ही है. पर जब मिठासकी ललक और बढ़ी और जब ले मठड़ी! ले बूंदी! ले मोहनथाल!... फिर क्या होवे? डायाबिटीज़ होवे. "यह ज़िंदगी जिस तरहसे संवारी गई, ज़िंदगीकी तलब ही बढ़ाई गई" याके परिणाममें डयाबिटीज़, अन्धापा, हार्ट्-एटेक्, लकवा विगेरे होवे ही हैं. तो देखो के जो ज़िन्दगीकुं संवारवेके रस्ता हैं उन्हींपे जादा आगे बढवेसुं विनाशके मुकाम भी आ जावे हैं.

भगवान्ने बहुत निन्दा करी है, सारे शास्त्र भी निन्दा करे हैं जिह्वोपस्थ-परायणताकी. परन्तु यदि स्त्री-पुरुष एक-दूसरेकुं चाहते नहीं होते तो ये सृष्टि कबकी बन्द हो गई होती. और आज जो एड्स जैसी जो बीमारियें फैल रही हैं वो कायसु फैल रही है? "ये ज़िंदगी जिस तरहसे संवारी गई, ज़िंदगीकी तलब ही बढ़ाई गई". अब या बातकुं यदि अपन कोईकुं समझावे जावें तो "आईनेसे बिगड़के बैठ गये, जिनकी सूरत उन्हें दिखाई गई" हो जाये! क्या

करनो! हर जगह या तरहकी तकलीफ है. शायद अपने ठाकुजीके अलावा ओर कोईकुं आरसी देखनो पसंद नहीं आवे है. ग्रन्थस्थ सिद्धान्तकी आरसीमें अपने कृत्यको प्रतिबिम्ब देखनो अपन आधुनिक पुष्टिमार्गीयनूकुं कितनो बुरो लगे हैं!

मनुष्यके बसको ये रोग नहीं है के वो अपने आपकु आरसीमें देख सके. क्योंके वहां फिरसुं वही बात आ रही है के जिन अ. - म.सुं अपनी ज़िंदगी संवारी गयी है वो अपनी सूरत जब अपन सिद्धान्तकी आरसीमें देखे हैं तो बड़ी विकृत दीखे है, माथा शर्मसु नीचो हो जाय है. आरसीपे गुस्सा करवेसुं परन्तु लाभ क्या! अपनेमें ठाकुरजीके जैसो गट्स् नहीं है के अपन अ. - म.के शृंगार पहनके अपने-आपकुं सिद्धान्तकी आरसीमें कभी तो देख लेंवे! ये सब अपनी अ. - म.के अनियन्त्रित विकासको दुष्परिणाम है. अनियन्त्रित विकास फिर चाहे वो धर्मको होवे, ज्ञानको होवे, तपको होवे अथवा वैराग्यको होवे. सच्ची बात तो ये है के अनियन्त्रित विकास तो दीनताको भी खतरनाक है. मैं अक्सर एक प्रसिद्ध श्लोक सुनाउं हूं : "के यूयम्? हरिपादपद्मनिरतश्रीपादपायूदकक्लिद्यन्मूत्रलुठन्पिपीलकवधूदासाः". अब देखो अ. - म.के खेलको क्या मजेदार खिलवाड़ मैं आपकु बता रह्यो हूं. कोईने पूछी के "आप कौन हो?" जवाब मिल्यो : हरिके चरणकमलनूकी सेवा लगे रहवेवाले जहां छीवे जाके पग आदि धोते होंवें वहां लोटनेवाली चींटीनूके हम दास हैं! अब ऐसी दीनताकी ऐसी गर्वोक्ति सुनते ही सुननेवालेकुं क्रोध आ गयो. मेरे सामने मोंसुं अधिक दीन बनवेकी कोशिश कैसे सहनी! जब वासुं पूछ्यो गयो "भवन्तश्च के?" आप कौन हो? तो वाने कह्यो "श्रीमद्वैष्णवशिष्यशिश्नविगलन्मूत्रोत्थदूर्वांकुर-ग्रासासक्तखुरीखुराग्ररजसां दासानुदासोऽस्म्यहम्!" अब आओ! तुमने ऐसी दीनता क्यों दिखायी? इतनी दीनता प्रकट करी, शर्म नहीं आवे है. तो अब हम क्या हैं वो भी सुन लो : जहां भगवदीय जन पिशाब करते होंय वहां उगवेवाली घांसकु चरवेवाली गधीके खुरपे

लगी रजके दासके भी हम दास हैं! ये क्या है? दैन्यमें भी कोम्पिटीशन्!.

अ. - म. अपने सङ्ग या तरहसुं दैन्यमें भी छलना कर ही जाय है. "काम एषः क्रोध एषो रजोगुणसमुद्भवो महाशनो महापाप्मा विद्धचैनम् इह वैरिणम्". अ. - म.को अनियन्त्रित विकास सचमुचमें अपनो महान् शत्रु है. ये सब अ. - म.को खेल है. अपन अ. - म.सुं गामके सङ्ग खेल रहे हैं और अ. - म. अपने सङ्ग खेल खेल जाय है!

या खेलसुं कुछ लोग घबड़ा जावे हैं. उन घबड़ा जानेवाले धर्मनूमें प्रमुख है बुद्धधर्म. या लिये बुद्ध भगवान्ने कह्यो "आत्मग्रहो महामोहः". उनने कह्यो के सबसुं पहले अहन्ताकुं खत्म करो. अहन्ता जब तक रहेगी तब तक तुम्हारो निस्तार नहीं है. याकु खत्म करवेकेलिये उनने अहन्ताके विषय आत्माकु भी इन्कार दियो! आत्मा होवे तो अहन्ताकुं कोई विषय मिलेगो और वाके आधारपे तुम अहन्ता कर पाओगे न. और अहन्ता होयगी तो ही तुम कहीं ममता भी जोड़ पाओगे. इन दोनोनूकी जड़ काटवेकेलिये बुद्धने कह्यो के "आत्मा नहीं है". देहकी क्षणभङ्गुरता ही हकीकत है. एक फिल्मी गाना हतो "आगे भी जाने न तु पीछे भी जाने न तु, जो भी है बस यही एक पल है" ऐसो भगवान् बुद्धको क्षणभङ्गवाद हतो. वाके अनुसार तुम्हारे हाथमें एक पल है वाके अलावा कुछ नहीं है. आत्मा - वात्मा सब जूठी बात है. अहन्ताको या तरहको इन्कार अपनकुं वाके दुष्परिणामनूसुं बचा तो अवश्य सके हैं पर यामें सबसु बड़ी तकलीफ ये है के यदि भारतीय धर्म - दर्शनको इतिहास देखो तो पता चलेगो के बुद्ध भगवान्द्वारा अनात्मवादको स्थापन अपने धर्मकुं अनात्मवादिताको झंडा फरकावेकेलिये आत्मप्रसिद्धकेलिये नहीं भयो हतो. उनके सामने समस्या कोई भी उपायसुं अहन्ताकी जड़ काटवेकी हती. याके समाधानके रूपमें ही उनने अनात्मवाद प्रस्तुत कियो हतो. परन्तु आप बुद्धधर्मके सङ्ग वैदिक धर्मके शास्त्रार्थके २५०० वर्षको

इतिहास देखोगे तो जानके आश्चर्य करोगे के जा अहन्ताके विनाशकेलिये भगवान् बुद्धने अनात्मवाद प्रस्तुत कियो हतो वो अनात्मवादकु लेके बुद्धके अनुगामी वैदिकनकु निरन्तर गाली देते आये हैं के तुम आत्मवादी हो, पाखण्डी हो, धूर्त हो... तो देखो बुद्धकी समस्या तो अनात्मवाद कहवेके बाद भी वो ही रही न! "जिस जगहसे ले चला था राहबर हम वहीं आये हैं फिर घूमके". बात पाछी वहीं आ गई, आगे नहीं बढ़ी जहां भगवान् बुद्ध बढ़ानो चाहते हते!

आगे प्रतीक लिख रह्यो है आत्मास्तित्व और आत्मामें रही भयी इच्छा अपने जीवनके अनिवार्य उपादान हैं. और इनको अपने जीवनचक्रमें कोई पॉज़िटिव् रोल् भी है जाकुं अपन नकार नहीं सके हैं. क्योंके बादमें वों विकृत होके खराब हो जाय हैं, क्योंके गवर्न्मेंट् ऑफिसर् पेटी और खोखा लेवे लग जाय है तो वाके कारण अपन यदि बच्चाकी चोकलेट्की ललककु दबावे लगें तो बच्चाके शरीरकु शक्करकी जो टु सर्टन् एक्स्टेन्ट् जरुरत है वा जरुरतसुं भी वाकुं वञ्चित रखनो पड़ेगो. तब तो बच्चाको विकास स्वस्थ नहीं हो पायेगो. तो देखो के जितनी अ.-म.की अपनकुं आवश्यकता है उतनी अ.-म.कुं अपनने विकृत अ.-म.के प्रति अपने रोषके कारण नकार दी तो, या तो अपन कोई ट्रेप्में फंस जायेंगे या फिर अपनो जीवनचक्र ही बंद हो जायगो.

आजकल अपने पुष्टिमार्गमें अ.-म.कुं जितनी गाली बुद्ध भगवान्ने नहीं दी हती उतनी गाली दी जावे है. पर अ.-म.को सम्पूर्ण विनाश करनो ये श्रीमहाप्रभुजीको दृष्टिकोण नहीं है. यदि ऐसो कियो गयो तो अपने जीवनके उत्कर्षके जो भी कुछ आधार हैं उनकुं भी अपन खण्डित कर देंगे. यासुं ये दो अतिवाद के अ.-म.कुं केंसरस् गांठकी तरह अनियन्त्रित रूपसु बढ़वे देनो, वाकुं काटनो नहीं, उपचार नहीं करनो; या फिर काटनो तो ऐसो काटनो के वो मूलसुं

ही खत्म हो जाय ये दोनों अतिवाद खतरनाक हैं.

ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग अ.-म.की चिकित्सा कैसे करें हैं वाको निरूपण अब आगे कियो गयो है. अहन्ताकी चिकित्सा ज्ञानमार्ग करे है और ममताकी चिकित्सा कर्ममार्ग करे है. पर अहन्ताकी चिकित्सा करते समय ज्ञानमार्ग ममताकी चिकित्साकी उपेक्षा करे है. क्योंके ज्ञानमार्ग विरक्तकेलिये बतायो है : "निर्विण्णानां ज्ञानयोग:". विरक्तमें तो स्वत: ही ममता रह नहीं जाय है. ममता नहीं है तो वाकी चिकित्सा भी कहांसुं प्राप्त होयगी? रोग ही नहीं है तो चिकित्सा कहांसु प्राप्त होयगी. आज लोग ऐसो कहवे लगे हैं के ज्ञानमार्ग सबकेलिये है. पर ये "पुरि एक अंधेरी ने गंडु राजा टके शेर भाजी टके शेर खाजा" जैसी बात है. वस्तुत: शास्त्रीय व्यवस्थामें ज्ञानमार्ग विरक्तकेलिये बतायो गयो है. विरक्तमें ममता नहीं होयवेसुं वामें बची भयी अहन्ताकी चिकित्सा ज्ञानमार्ग करे है.

याही तरह कर्ममार्ग ममताकी चिकित्सा करे है. कर्ममार्गीकी वृत्तिको वर्णन एक वेदमन्त्रमें बहोत सुन्दर दियो गयो है. कर्ममार्गी कहे है "वित्तञ्च मे, पशूंश्च मे, भार्या च मे, पुत्रञ्च मे, गृहञ्च मे... ". कर्ममार्गीकुं ये चहिये वो चहिये, ये कर्म करुं तो वो फल मिल जायेगो वो कर्म करुं तो ये फल मिल जायेगो. ऐसो ही वाके मनमें निरन्तर चलतो रहे. यासुं कर्ममार्गीमें ममता इतनी बढ़ जाय है के वाके अंदर आत्माभिमान जैसो कुछ बच्यो नहीं रहे. यासुं वाकी अहन्ताकी चिकित्सा कर्ममार्गकुं करनी ही नहीं पड़े है. कर्ममार्ग यासुं ममताकी चिकित्सा करे है. यालिये कर्ममार्ग कब मुक्तिप्रदायक होयगो? श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त है के निष्काम कर्म करो तो मुक्तिप्रदायक होयगो.

गीताकुं अपन या सन्दर्भमें समझें तो वो डीप् इन्साईट् अपनकुं

देवे है. ज्ञानी जब भगवान्सुं पूछवे जावे के मैं क्या करुं तो भगवान् वाकु कहे हैं "तु कर्म कर!. तु ज्ञानी हो गयो है. अब तेरेमें ममता तो रही नहीं! अब तु कर्मसुं भागेगो ही. कर्म हमेंशा दूसरेके साथ कियो जाय है. दूसरेकी तेरेकुं दरकार नहीं है. याके कारण तेरे भीतर अहन्ताको भयङ्कर विस्फोट हो जायगो" वो विस्फोट न हो जाय वाकेलिये भगवान्के पास जब ज्ञानमार्गी जावे तब भगवान् वाकु कहेंगे "तु कर्म कर!" और कर्ममार्गी जब भगवान्के पास जावे तब भगवान् वाकु कहेंगे "तु निष्काम होजा!" ये तो ज्ञानमार्गकी ट्रैट् है. कर्ममार्गकी जो ट्रैट् है वो ज्ञानमार्गीकु बता देवे हैं. लिहाजा भगवान्की स्ट्रेटेजी गीतामें कर्ममार्गीकुं निष्कामता बतावेकी है. ज्ञानमार्गीकु, यदि भगवान्के "काम एषः क्रोध एषः" वचनकुं लक्ष्यमें लें तो, निष्क्रोध होवेको उपेदेश देवेकी है. भगवान् कहनो चाहेंगे "यदि तु सचमुचमें ज्ञानी है तो निष्क्रोध होके दिखा! तब तो ज्ञान है, नहीं तो काहेको ज्ञान!" क्योंके, एक बात समझो के जा आदमीकुं ममता है वाकु जल्दीसु क्रोध नहीं आ सके है. पर निर्ममकुं क्रोध जल्दी आयगो. ज्ञानी निर्मम होवे है यालिये सब अज्ञानीन्पे वाकुं क्रोध आयगो. वो सोचतो रहेगो के ये सब पशु हैं, जानवर हैं.

हम गोस्वामीनुकुं भी वैष्णवन्पे या ही लिये क्रोध आतो होवे है. क्योंके हम सबन्ने अपने आपकुं बैठे बिठाये ज्ञानी मान लियो!

निर्ममताके कारण क्रोधको विकास बहुत विस्फोटक हो जाय है. या लिये भगवान् समझा रहे हैं के ये काम-क्रोध नाशक हैं. क्योंके ज्ञानीकुं हर चीज़कुं विरागसुं देखनो है. विरक्त होवेकेलिये हर चीज़में वाकु दोष देखने पड़ेंगे. और दोष दीख्यो तो क्रोध आयगो ही. जैसे ही क्रोध आयो तो समझो के अहन्ता पाछी तुमकुं छल गई. यासुं भगवान् वाकुं कहे हैं के कर्म तु वैसे ही कर के जैसे कोई कर्ममार्गी कर्म करतो होवे. भगवान्ने वहां थ्रेटनिंग् भी की है

के "यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितो मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः, उत्सीदेयुरिमे लोकाः न कुर्यां कर्म चेद् अहं, सङ्करस्य च कर्ता स्याम् उपहन्याम् इमाः प्रजाः". तु मेरेसुं ज्यादा क्या जान पायेगो! तो मैं भी तो कर्म कर ही रह्यो हूं. क्यों कर रह्यो हूं? क्योंके मैं दुनियाको नाश करनो नहीं चाह रह्यो हूं. सो तू अपने ज्ञानसुं कहीं दुनियाको नाश मत कर दीजो. ज्ञानको दुरुपयोग मत करियो. यासुं भगवान्ने ज्ञानीकुं कर्म करवेकी आज्ञा दी.

कर्मी भगवान्के पास जावे तो भगवान् वासु कहेंगे के तु निष्काम हो जा. पर सोचो के जब कोईकुं कछु कामना ही नहीं होवे तो वो कर्म क्यों करेगो! फिर भी भगवान् कर्मीकुं कहेंगे के निष्काम होके कर्म कर. गीताकी स्ट्रेटेजी समझवेको प्रयत्न करो के भगवान् यहां अ.-म.के अनियन्त्रित विकासकुं कंट्रोल् में करवेकी बात कह रहे हैं.

भक्ति, परन्तु, क्या है! इन अ.-म.को समनुपाती विनियोग. यदि वो भगवान्के बारेमें है तो भक्ति है और यदि संसारमें है तो अपन वाकु 'सांसारिक आसक्ति' कहेंगे. "या प्रीतिः अविवेकानां विषयेषु अनपायिनी त्वाम् अनुस्मरतः सा मे हृदयान् मा अपसर्पतु" ये बात या लिये कही जाय है के अपने परिवारजनन्के प्रति रहे अपने मनोभावनुकुं 'भक्ति' नहीं कहे हैं पर उनके प्रति अपनी अ.-म.को सन्तुलन भक्तिके जैसो ही होवे है. क्योंके परिजनन्के प्रति अपन अपनी अहन्ताकुं निभाते भये ही ममता भी रखे हैं. अहन्ता भी अपन विरागीकी तरह नहीं रखे हैं के "न मे भार्या न मे पुत्रो न मे वित्तं न मे गृहम्". तो जैसे अ.-म.को समनुपाती विनियोग संसृति है वैसे ही अ.-म.को समनुपाती भगवद्विनियोग भक्ति है. इन दोनोन्के बीचकी विभाजकरेखा अपनी वृत्तिके कारण नहीं है, विषयके कारण आ रही है. विषय यदि लौकिक है तो संसृति

है, यदि ऐसी वृत्तिको विनियोग भगवान्में है तो वो भक्ति ही है.

ये ही बात यहां प्रतीक कह रह्यो है के "दासोऽहं कृष्ण तव" कहके अपन अपने अहङ्कारको विनियोग भगवान्में करें हैं. "श्रीकृष्ण: शरणं मम" कहके अपनी ममताको भी विनियोग भगवान्में करें ही हैं.

वा दिन अङ्किताके पेपरपे हितेन्द्रने प्रश्न उठायो हतो वा बारेमें भी मैं कुछ कहनो चाहूंगो के "श्रीकृष्ण: शरणं मम" अपन पहले कहे हैं और ब्रह्मसम्बन्धमें "दासो अहम्" बादमें क्यों कह्यो जाय है? कुछ तो वाके इम्प्लिकेशन्स् अपनकुं मानने ही पड़ेंगे. क्योंके यदि अहन्ता मौलिक होती तो और ममता एक्वायई होती तो पहले "दासो अहम्" कहनो चहितो हतो और वाके बाद अष्टाक्षर कहनो चहितो हतो. अपनी प्रक्रिया परन्तु ऐसी नहीं है. अपन कृष्णकुं पहले मेरो कह दे हैं. अपनी इन्हियरेंट इन्क्लिनेशन् ममताको विनियोग पहले श्रीकृष्णमें कर दे हैं. वाके आधारपे अपन कृष्णके साथ बादमें सम्बन्ध बांधे हैं के "मैं तेरो दास हूं". कृष्ण मेरो होय तो ही मैं कृष्णको दास हो सकूं हूं. यदि कृष्ण मेरो नहीं है तो "मैं दास हूं" ये भी "के यूयं हरिपादपद्मनिरता"वाली कृष्णके साथ चीटींग् हो सके है.

क्योंके एक कहेगो मैं कृष्णदास हूं, तो दूसरो कहेगो मैं राधादास, तीसरो कहेगो मैं जमुनादास. वाके विरुद्ध जाके दूसरो कोई कह देगो मैं तो वल्लभदास हूं, वासुं भी आगे बढ़के कोई कहेगो के नहीं " मैं तो विट्ठलदास हूं". फिर तो गोकुलदास, गिरिधरदास, गोविन्ददास, रघुनाथदास यों झगड़ा बढ़तो ही चल्यो जायगो. अन्तमें "धरमना छेतरमां ने कुरुना छेतरमां ई घड़िकमां बाझी मरे, मारा छोकरा ने मारा भाईना छोकरा बेउ भेगा थईने हुं करे हंजयड़ा?

ई भेगा थइने हुं करे? हाहरोए मुए ने हाळोए मुए ने बाझी-बाझीने मरी जाय... तु तो तारा तीर दीधे राखनि एमां तारा बापनुं हुं जाय!" या तरहसुं सब लोग अपने-अपने तीर छोड़ने लग जायेंगे.

ये सब क्या चला रह्यो है! बात तो कोई समझो. कृष्णमें अपनी अ.-म. जोड़नेकी बात हती वामें ये सब लफड़ा कहांसु घुस गये! ये सब वोही अ.-म.को खेल है : "काम एष: क्रोध एषो रजोगुणसमुद्भवो महाशनो महापाप्मा... धूमेनाव्रियते वह्नि: यथादर्शो मलेन च यथोल्बेनावृतो गर्भ: तथा तेनेदम् आवृतम्". या परिस्थितिकुं अपनकुं समझनी पड़ेगी. जो अ.-म. अपने जीवनको आधार है वाको ऐसो अनियन्त्रित विकास ही ये सब समस्यान्को मूल है. इन वृत्तिन्की विरोधाभासिताकुं सोचते-सोचते आदमी घबड़ा जाय है. विभिन्न धर्मसाधनान्के फोर्म्युला यामेंसु पनपे और उनमें आदमी दिग्भ्रान्त हो जाय है.

जिन लोगनकुं कृष्णकुं नहीं पकड़नो है उनकी तो कथा दूसरी ही है. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके अनुसार या समस्याको समाधान देनेवालो रहस्य कृष्णकुं ही पकड़नेपे समझमे आयगो. वो रहस्य क्या है?

वो रहस्य भगवान्ने स्वयं प्रकट कियो है :

"भूमिरापोऽनलोवायु: खं मनोबुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां।
जीवभूतां महाबाहो! ययेदं धार्यते जगत्॥"

भगवान्की एक परा प्रकृति जीवभूता है. वामें हाथ-पैर, आंख-नाक-कान, बुद्धि-मन-अहङ्कार... विगेरे कुछ भी नहीं है. वो कुछ भी काम नहीं करे है. भगवान् कहे हैं के दूसरी मेरी

जो अष्टधा प्रकृति है ये परा प्रकृति वासुं ऊपर है.

असितके शब्दमें वो अरसिक साक्षी है. वो चेतना जब ''भूमिरापोऽनलोवायु...''में ट्रेप् फंसी भयी होवे तब तो रसिक बन जाय है अन्यथा नहीं. अब जो रस प्रकट हो रह्यो है वो या तरहकी म्युच्युअल ट्रेपिंगमें है के जड़ अहङ्कार चेतनासुं ग्रस्त हो जाय है और चेतना जड़ अहङ्कारसु ग्रस्त. अब अपने भीतर संसृति, कर्म, ज्ञान, या भक्ति आदिके जो भी रस प्रकट होयेंगे वो परस्परोपरक्त चेतना और अहङ्कार के कारण हो रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजी यापेसुं ही समझानो चाहे हैं के कुछ इशारा तो समझो के तुम्हारी गाड़ी कहां जा रही है. न तो चेतनामें कोई दम है न वा अष्टधा प्रकृतिमें कोई दम है. तब प्रश्न होवे है के इनमें रस आयो कहांसु? श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के ये दोनों जाकी प्रकृति हैं वामें रसरूपता होनी चहिये. वो रसरूप है. यासुं वो एक ऐसो रूप प्रकट कर रह्यो है. पहले वो अपनी रसरूपता तिरोहित करके जडरूप और चिद्रूप प्रकट करे है और वाके बाद उनके इन्टर्-एक्शन्सुं वो संसृतिको विषयरस प्रकट कर दे रह्यो है. ये खेल या तरहसु शुरु भयो है के याको मूल खिलाडी छुप गयो है.

या बातकुं एक्स्प्लेइन करवेकेलिये अपने पास या दुनियाको कोई मोडल् नहीं है. क्योंके अपने पासके मोडल् दुनियाके पैदा होनेके बादके मोडल् हैं. याकु समझवेकेलिये थोडो बहुत टुच्चो मोडल् आजकलकी क्रिकेटकुं कह्यो जा सके है. आजकल क्रिकेट-टीम जब मेच खेले तब वाको मेनेजर खिलाडीन्मेंसु कोईकुं केप्टन, कोईकुं वाइस् केप्टन, कोईकु बोलर, विकेटकीपर... तो बना दे है पर वो मेनेजर खुद कोई क्रिकेट नहीं खेलतो होवे हैं. वो तो पेवेलियनमें बैठके खाली मज़ा लेते रहै. ''निकलना तुम न चिल्मनसे कसम है तुमको चिल्मनकी, लडाई आड़से देखा करो शेखो-बिरहमनकी''. तो भगवान् भी कहीं

छुपके बैठके या खेलकी मज़ा ले रह्यो है.

वस्तुतः ये क्रिकेटवालो मोडल् या सृष्टिके खेलकुं एक्स्प्लेइन नहीं कर सके है. क्योंके ब्रह्म पुरुषोत्तमात्मना सृष्टिसुं स्वतन्त्र रहके वाकी मज़ा भी ले रह्यो है, अक्षरब्रह्मात्मना वो या लीलासृष्टिको स्टेज भी बन रह्यो है और जीवात्मना वो केरेक्टर या प्लेअर् भी बन रह्यो है. पर बात समझो के ये ब्रह्म स्वयं रसात्मक है ''रसो वै सः. रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति. को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्. एष ह्येवानन्दयाति''. वो रस अपनी रसरूपताकुं तिरोहित करके चेतना और प्रकृति रूप धारण करे है. ये दोनों नीरस हैं. पर इन दोनोन्की इतरेतरग्रस्तताके कारण विषयानुभूतिमें संसृतिरस प्रकट हो जावे है. या संसृतिरसकुं अपन कर्म, ज्ञान और भक्ति के प्रकारसुं भी डील कर सके हैं. यामें यदि वा रसपे कभी अपनी दृष्टि जावे के जाके कौनके कारण ये सब खेल चल रह्यो है, तो श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के तब तो पुष्टि प्रकट हो गई. अब अपनकुं भक्तिरस या लीलारस को बोध सहजतया हो पायगो. परन्तु या बोधकी शुरुआत कैसे करनी? श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के या खेलमें यदि तुमने वा रसकुं पकड़ लियो तो तुम्हारो काम हो जायगो.

मथुराके एक गोस्वामी दीपक रागको खेल खेलते हते. रातकुं जब संगीतकी महेफिल होती तब थोडी देर बाद कोईसू फर्माईश कराई जाती के अब तो दीपक राग छिड़नो चहिये. महेफिलमें कोई नयो आदमी आयो होतो वो समझतो के दीपक रागसुं तो दीया जलेंगे. सो पहले दीया बुझाने तो पड़ेंगे ही. जैसे ही दीया बुझते वैसे ही दो-तीन लोग मार-पीट शुरु कर देते. अंधेरामें कौन कौनकुं पीटतो ये तो पता ही नहीं चलतो. सब लोग यामें पिटते पर या खेलके आयोजक गोस्वामी कभी हाथ लगते नहीं! एक बखत एक व्यक्तिके मनमें आयी के हर बखत गोस्वामी क्यों बचके निकल

जाय हैं! अबके तो उनकुं पकड़नो ही है, तब ही दीपक रागको रस हाथ लगेगो. ये सोचके वो गोस्वामीके पास एक दिन बैठ गयो. जैसे ही महेफिलमें दीपक रागकी फर्माईश होके अंधेरा भयो वैसे ही वाने महाराजकुं पकड़ लियो और पीटनो शुरु कर दियो. वाकुं दीपक रागको रस बड़े दिन बाद हाथ लग गयो! जैसे ही महाराजकी पिटाई भई, वैसे ही महाराज चिल्लावे लगे के ये क्या कर रहे हो! ये तो मैं हूं.

ऐसे ही वो रस पकड़में आनो चहिये. भगवान्ने भी अपनी सृष्टिमें कछु दीपक रागको खेल चला रख्यो है. "एष उ ह्येव साधु कर्म कारयति... एष उ ह्येव असाधु कर्म कारयति यम् अधो निनीषति" कोईकुं वो ऊपर उठावे है कोईकु नीचे पटक दे है. कभी तो, यार!, वाकुं भी पकड़ो. श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के वो ही सच्चो रस है. जो वा रसकुं पा लेवे है वो आनन्दी बन जावे है. या लिये वाकु पकड़ो. पकड़ोगे कैसे? वाके पास जाके बैठो. वाकुं पुष्ट करके पकड़के अपने घरमें बैठाओ. वाकुं जगाओ, नहलाओ, शृंगार करो, आरसी दिखाओ और वाकु ये भी दिखाओ के देख तेरी सृष्टिमें दीपक राग कैसे गायो जा रह्यो है. या तरहसुं वाकुं तुम्हारे पाप-पुण्य सुख-दुःख सबमें वाकुं भी पकड़के बैठा रखो. तब असल रसको स्वाद तुमकुं आ जायगो. भक्तिवर्धिनीमें श्रीमहाप्रभुजी ये ही कहे हैं "बीजदाढ्यर्प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतो, अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः, व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ न्यसेत् सदा". ये दीपक रागकी महेफिल जमानेवालेकु पकड़वेको अपनो मज़ेदार प्रोग्राम है. जाकुं श्रीमहाप्रभुजीने अपनकुं प्रिस्क्राईब् कियो है. श्रीमहाप्रभुजी अपनकुं कहे हैं के जा तरहसुं तुम संसारमें अपनी अ.-म.को समनुपाती विनियोग करो हो वैसे या प्रोग्राम्के तहद् तुम यदि अपनी अ.-म.को समनुपाती विनियोग अपने घरमें बिराजते ठाकुरकी भक्तिमें करोगे तो दीपक रागकी महेफिल जमावेवालेकुं तुमने अहन्ता-ममताके अंधेरामें

ही पकड़ लियो!

दीपक रागकी महेफिल जमावेवालेकुं पकड़नेको प्रोग्राम् बनानेमें श्रीमहाप्रभुजीने कितनी सावधानी बरती है! वो आप यापेसुं सोच सको हो के श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं "सेवाकृतिर् गुरोः आज्ञा बाधनं वा हरीच्छया". श्रीमहाप्रभुजीने 'सेवाकृतिः' पद वापर्यो है "स्नेहकृतिर् गुरोः आज्ञा" नहीं कह्यो है. "भगवान्के साथ स्नेह गुरुकी आज्ञासुं ही करनो और हरिकी आज्ञा होय तो ही बाध करनो" ऐसे नहीं कह्यो . स्पष्ट कह्यो है : "सेवाकृतिः गुरोः आज्ञा". ये तो अपनने श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीको अवगाहन नहीं कियो है वा पापको दण्ड आज अपन भुगत रहे हैं.

यासुं कल और परसों के सत्रसुं गुरुके सम्बन्धमें इतनी लम्बी चर्चा चल पड़ी. अपनकुं अपने फंडामेंटल् प्रिन्सिपल् पता नहीं है. वाकी ही पीड़ा या अपने दिव्य सम्प्रदायमें अपन आज भुगत रहे हैं. व्यर्थ ही क्षुद्र तिलन्को ताड़ बनाते फिरे हैं और ताड़ जैसी ऊपर उठी भई विकराल अपसिद्धान्तन्की समस्यान्को भय तिल बराबर भी माने नहीं हैं. पर श्रीमहाप्रभुजी जो बात समझानो चाहे हैं वा बातपे ध्यान दो : "गुप्तानन्दाः यतो जीवा निरानन्दं जगद्यतः, पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात् कृष्णः सेव्यः सुखार्थिभिः". भगवान्ने सृष्टिमें जो जगत् प्रकट कियो है वो निरानन्द है, जीव गुप्तानन्द है और पूर्णानन्द तो हरि ही है. ये गुप्तानन्द और निरानन्द के बीच दीपक रागकी महेफिल जमावेवालो तो वो पूर्णानन्द हरि ही है. पर वो खुद तो छुप भयो ही है. यासुं सारे झगड़ा गुप्तानन्द और निरानन्द के बीचके इन्टरेक्शन्सुं पैदा हो रहे हैं. यामें अपनकुं पूर्णानन्दकुं खोजनो है. याको उपाय श्रीमहाप्रभुजी बता रहे हैं के भगवत्सेवा है. यामें अपनकुं गुरुकी आवश्यकता है. ध्यान दीजियो, भक्तिके भीतर तो सेवा और स्नेह दोनों बातें आवे हैं. क्योंके प्रेमपूर्विका सेवा = भक्ति है.

श्रीमहाप्रभुजीने "स्नेहकृतिर् गुरोराज्ञा" नहीं कह्यो है. क्योंके प्रभुकुं स्नेह करवेमें गुरुकी दरकार नहीं है. स्नेह करवेमें श्रीमहाप्रभुजीकी भी दरकार नहीं है, माईन्ड इट्. ये बात श्रीमहाप्रभुजी खुद कह रहे हैं. मेरी बात समझो. मैं ये बात श्रीमहाप्रभुजीके प्रति आदरके साथ कह रह्यो हूं.

यहां आप गुरुको मतलब कुछ भी समझो. चाहो तो श्रीमहाप्रभुजी ही गुरु हैं ऐसे मानो. चाहो तो श्रीमहाप्रभुजीके बाद श्रीगोपीनाथजी और श्रीगुसांईजी भी गुरु हैं ऐसे मानो. या उनके बाद सात लालजी तक गुरु होवे हैं ऐसे मानों. अथवा आजकलके हम गुसांई भी गुरु हैं, या अपन गुरु नहीं हैं, या कोई भी गुरु हो सके है, या नहीं हो सके है... इनमेंसुं कोई भी पक्षकुं मानो. एक बात ध्रुव सत्यकी तरह अपने सामने पड़ी भई है के श्रीमहाप्रभुजीको उपदेश "सेवाकृतिर् गुरोः आज्ञा" को है "स्नेहकृतिर् गुरोः आज्ञा" को नहीं है. जहां भगवान्के साथ प्रेम करनेको प्रश्न आयो वहां गुरुकी जरूरत ही नहीं है. क्यों जरूरत नहीं है? क्योंके भगवान्में प्रेम गुरु सिद्ध कर नहीं सके है. कोई भी गुरु होवे, श्रीमहाप्रभुजी भी क्यों न होंय. वो भी प्रेम सिद्ध नहीं कर सकें. क्योंके जो पैदा कियो जा रह्यो है वो श्रीमहाप्रभुजीके अनुसार प्रेम ही नहीं है!

प्रेम तो स्वतःसिद्ध होवे है. श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त या बारेमें समझो के जो तुम्हारे हृदयमें ओल्रेडी सिद्ध है वाको नाम 'प्रेम' है, जो साध्य है वाको नाम 'प्रेम' नहीं है. सेवाके द्वारा सिद्ध प्रेम ही प्रकट हो सके है, सेवासुं प्रेमकुं पैदा नहीं कियो जा सके है. याकुं आप चाहो तो 'बीजभाव' कहो, चाहो तो 'वरण' कहो, चाहो तो 'श्रीमहाप्रभुजीकी कृपा' कहो, चाहो तो 'गुरुकृपा' कहो. कुछ भी कह दो पर एक बात निश्चित समझो के स्वयं श्रीमहाप्रभुजी भी यों नहीं कह सके हैं के वो भगवत्प्रेमकुं पैदा कर सके हैं.

यदि जीवमें भगवत्प्रेम सिद्ध है तो श्रीमहाप्रभुजी वाकुं प्रकट करवेको रास्ता दिखला सके हैं. यदि श्रीमहाप्रभुजी जीवमें भगवत्प्रेम प्रकट कर सकते तो आजकलके हम गुसांई बालक जैसे "टके सेर भाजी टके सेर खाजा" के तरह जो कोई दीख्यो नहीं के पकड़-पकड़के ब्रह्मसम्बन्ध देते फिरे हैं ऐसे, जीवके उद्धारकी दृष्टिसुं ही सही, श्रीमहाप्रभुजी भी ब्रह्मसम्बन्ध क्यों नहीं दे सकते हते! क्योंके श्रीमहाप्रभुजीकुं ये बात अच्छी तरह पता हती के जा जीवमें प्रभुनी बीजभावरूपी प्रेम स्थापित नहीं कियो है वाके अन्दर भगवत्प्रेम ब्रह्मसम्बन्ध देवेसुं और सेवा करवा लेवेसुं भी प्रकट नहीं हो पायेगो!

वार्ता पढ़ोगे तो पता चलेगी के कई बार तो श्रीमहाप्रभुजीके सामने ऐसे लोग भी आये हैं के जिनकुं ठाकुरजीको साक्षात्कार पहलेसुं ही हो चुक्यो हतो. श्रीमहाप्रभुजीने उनसुं पूछ्यो के मेरे पास क्यों आये हो? उनने कह्यो है के ठाकुरजीके दर्शन तो हो गये पर भक्ति प्रकट नहीं भई या लिये आपके पास आये हैं. तो समझो गुरुकी कहां आवश्यकता है? "सेवाकृतिर् गुरोः आज्ञा". और वा गुरुकी आज्ञाको भी बाध प्रभुकी इच्छासुं हो सके है. अब बताओ के मुख्यता कौनकी है? आज मूर्ख लोग अलग-अलग पंथ चलाके श्रीमहाप्रभुजीके पीठमें छुरा भोंक रहे हैं. पर समझो के यदि श्रीमहाप्रभुजीकुं खुदकी भजनीयता अपेक्षित होती तो "बाधनं वा हरीच्छया" ऐसे क्यों कहते? "मेरे वचनको बाध करवेवालो कौन हो सके है!" ऐसे श्रीमहाप्रभुजीने क्यों नहीं कह्यो? पर श्रीमहाप्रभुजीने ऐसे नहीं कह्यो. क्योंके श्रीमहाप्रभुजीको एकमेव तात्पर्य है : जीवकी कृष्णपरायणतामें है, दीपक राग गवावेवालेकुं या अंधेरामें खोजवेमें है. या लिये श्रीमहाप्रभुजी दीपक राग गवावेवालेकी बाजुमें जाके बिराजे हैं के पकड़ याकुं! नहीं तो अंधेरामें एकदूसरेकुं ही अपन कूटते रह जायेंगे, पता ही नहीं चलेगी के कौन कौनकुं कूट रह्यो है "मम माया दुरत्यया". श्रीमहाप्रभुजी वहां पासमें बिराजे भये हैं यासुं भगवान् उनके हाथमें

आ गये हैं : "लीनो हाथ पकड़के अब कहां जायगो रे!"

श्रीमहाप्रभुजीने ठाकुरजीकुं पकड़्यो है और वा पकड़े भये श्रीहस्तकुं श्रीमहाप्रभुजी अपनकुं भी पकड़ानो चाहें हैं. पर श्रीमहाप्रभुजी ऐसो कभी नहीं कहे हैं के सब जीवनूमें प्रेम प्रकट कियो जा सके है. या लिये सबकुं ब्रह्मसम्बन्ध दे दो.

अरे हम गुसांइनूमें प्रेम प्रकट नहीं भयो तो हमारे ब्रह्मसम्बन्ध देवेसुं कोईमें प्रेम कहांसुं प्रकट होयगो! अपने माजना तो देखो काचमें. या तरहसुं ब्रह्मसम्बन्ध देवेसुं कोईमें प्रेम प्रकट होवेवालो नहीं है. खोटी भ्रमणामें मत जीओ. प्रेम तो वामें ही प्रकट होयगो के जाकुं प्रभुने अपने प्रति प्रेम प्रकट करवेकेलिये चुन्यो है. वो चुन्यो होय तो सेवा एक प्रकार है जो आज्ञाको विषय है.

ब्रह्मको स्वरूप एकमेवाद्वितीय हतो. वा स्वरूपमें न तो कोई प्रवाहमार्ग हतो, न मर्यादामार्ग हतो, न पुष्टिमार्ग हतो, न कोई जीवात्मा हतो, न कोई परमात्मा हतो. वा ब्रह्ममेंसुं ये सब विविध रूप प्रकट भये. ये विविध रूप पैदा भये तब तो विविध मार्ग पैदा भये. इन विविध मार्गनूमें ब्रह्म छुप गयो है. सारी टकराहट ब्रह्मके छुप जानेके कारण है. छुपे भये ब्रह्मकुं पकड़नो कैसे? श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं "प्रेमसंवलितं चित्तं सर्वत्र विद्यमानं भगवन्तं स्वयमेव विषयीकरोति". ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान् है. "किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुल्कसा आभीर-कङ्का-यवनाः खसादयो येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः" पर सर्वत्र विद्यमान् ब्रह्म-आनन्दकुं अपन देख नहीं सके हैं. वो वा प्रिय ब्रह्मकी मर्यादा नहीं है पर ये अपने मनकी मर्यादा है. वा सीमाके कारण अपन सर्वत्र प्रेम कर नहीं पावें हैं. यालिये श्रीमहाप्रभुजी अपनकुं कह रहे हैं के वाकुं यदि पकड़नो है तो वाके पास बैठो. नहीं तो तो तुम आपसमें ही एकदूसरेकुं कूटते रहोगे.

यालिये श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के यदि तुम्हारो चित्त प्रेमसंवलित है तो तुम्हारो चित्त स्वयं ही भगवान्कुं अपनो विषय बना लेगो. वामें गुरु क्या करेगो? गुरुकी वामें कोई आवश्यकता नहीं है. गुरुकी आवश्यकता प्रेमकेलिये नहीं है, वाकी आवश्यकता प्रेम प्रकट कैसे होवे वाके उपायकुं बतावेकेलिये है.

याद रखो के सेवा करवेसुं भी प्रेम प्रकट हो ही जायगो वाकी कोई गेरंटी नहीं है. क्योंके यदि सेवासुं प्रेम प्रकट हो जातो तो गुसांइनूमें पहले प्रकट हो जानो चहितो हतो, ट्रस्टी-भ्रष्टीनूमें भी पहले प्रकट होनो चहितो हतो! न गुसांइनूमें प्रेम प्रकट होवे है न ट्रस्टी-भ्रष्टीनूमें प्रेम प्रकट होवे है. सेवा करवेसुं प्रेम प्रकट होतो तो अपन लोग ठाकुरजीको धंधा क्यों करते? सेवा करवेसुं प्रेम प्रकट होतो तो मुखिया हड़ताल क्यों करते? आज तो मन्दिरनूमें मुखियाएं हड़ताल करे हैं. जितनी सेवा मुखिया करे है उतनी सेवा तो हम महाराज भी नहीं करे हैं. मङ्गलासुं लेके शयन पर्यन्त बिचारे मुखिया बेजना मशीनकी तरह सेवा करे हैं. फिर भी प्रेम कहां प्रकट होवे है? और ये मनोरथी बनियाएं कितने-कितने रुपया ठाकुरजीके मनोरथनूकेलिये फेंके हैं? वासुं यदि प्रेम प्रकट हो जातो होतो तो वो अपने घरमें ठाकुरजी पधराके उनकी सेवा क्यों नहीं करते! गाडी, टीवी, विडीओ इन सबनूमें प्रेम उनको प्रकट होवे है. इन सबनूकुं खरीद-खरीदके अपने घरमे पधरा लेवे हैं. पर ठाकुरजीकुं अपने घरमें क्यों नहीं पधरावे है! लुच्चो सेठीया वो कभी नहीं पधरायगो! वो मनोरथकेलिये मन्दिरमें पैसा फेंक सके है. तो समझो के अपनेमें प्रेम प्रकट होवेकी कोई सीमा है. अपन सेवा कर सके हैं पर प्रेम प्रकट नहीं कर सके हैं. प्रेम तब ही प्रकट होयगो के यादे अपने भीतर प्रेम होयगो. गुजरातीमें कहावत है : "कुवामां होय तो हवाड़ामां आवे". बैलकी तरह तुम कोस खीचते रहो पर जल कुवामें ही नहीं होयगो तो हवाड़ामें कहांसुं आयगो. तो या रहस्य कुं समझोके प्रेम होयगो तो

प्रकट होयगो. नहीं तो कितने भी साधन करोगे कुछ हाथ नहीं लगेगो.

श्रीमहाप्रभुजीने सेवाको प्रकार प्रकट कियो वो केवल या हेतुसुं के यदि अपन अपनी अ.-म.को समनुपाती विनियोग भगवान्‌में कर पाये तो क्या पता प्रेम प्रकट हो जाय! ये एक सट्टा है हों. यदि नंबर लग गयो तो निहाल हो जाओगे. ये बात मैं अपनी मनघढंत नहीं कह रह्यो हूं. श्रीमहाप्रभुजी सर्वनिर्णय निबन्धमें आज्ञा करे हैं के यदि प्रेम प्रकट होवेवालो होयगो तो हो जायगो और यदि नहीं भयो तो आपने कोई गलत काम तो कियो नहीं? खाली भगवत्सेवा ही तो करी. तुमने अपनी अ.-म.को समनुपाती विनियोग प्रभुमें कियो है. यामें यदि बिगड़ेगो तो क्या बिगड़ेगो? अब तक तुम अपनी अ.-म.को विनियोग सांसारिक विषयन्‌में करते हते वामें तुमने एक विषय और बढ़ा लियो. यामें तुम्हारो क्या बिगड़्यो? पर यदि सुधर्यो तो क्या होयगो? वाकी कोई गणना ही नहीं हो सके है, कोई तुलना नहीं हो सके है. या कारणसुं श्रीमहाप्रभुजी अ.-म.के समनुपाती विनियोगकी बात कह रहे हैं. वाकेलिये ही आपने तनुवित्तजाको और गृहसेवाको उपदेश दियो है. और अ.-म.के विनियोगमें कभी वाको अनुपात बिगड़ न जाय वाके ही लिये आपने "भार्यादिः अनुकूलः चेत् कारयेद् भगवत्क्रियाम्, उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्" जैसे उपदेश दिये हैं. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के परिवारके सभी जन हिलमिलके भगवत्सेवा करो, यदि सब सेवामें अनुकूल होवें. यदि कोई उदासीन है तो वासुं सेवा मत करवाओ, सेवा स्वयं करो. यदि परिवार सेवामें प्रतिकूल है और तुमसुं सेवा छूट नहीं सके है तो घर छोड़ दो. तो देखो बात वा अ.-म.के अनुपातकुं बनाये रखवेकी ही है. याकेलिये सेवाकर्ताकुं कुछ उपदेशकी जरूरत है.

व्यक्तिकुं यदि अपनी अ.-म.को अनुपात पता होतो तो पूरी

दुनिया ज्ञानी होती. दुनियामें कोईकुं साइकिआट्रिस्ट् की जरूरत नहीं होती. मेरे वचनकुं आप शिलालेखकी तरह लिख लो के दुनियामें जितने भी सांसारिक लफड़ा होवे हैं वो अपनी अ.-म.के अनुपातकुं बराबर नहीं जान पावेके कारण होवे हैं. मैं यदि याकुं अतिरञ्जित करके कहूं तो आपकुं आश्चर्य होयगो के हार्टएटेक् आनेमें भी ये ही कारण है, तलाक होनेमें भी ये ही कारण है, धंधामें नुकसान होवेमें भी कारण ये ही है, भाई-भाईके बीच झघड़ा होवेमें भी ये ही कारण है... अपन अपनी अ.-म.कुं वापर जरूर रहे हैं पर वाके अनुपातको ज्ञान अपनकुं नहीं है. जब तक आदमी बहुत इन्ट्रोवर्ट् नहीं होवे तब तक वो या रहस्यकुं जान नहीं सके है. और अ.-म.को खेल कितनो खतरनाक है के यदि कभी अपने सामने कोई आरसी आ जाय तो अपनी अ.-म. नाराज़ और हो जावें!

श्रीगुसांईजी जैसे तो कोई ही होवे हैं के जो श्रीदामोदरदासजीके टोकवे पे यों कह सकें के तुम्हारे मुखसुं श्रीमहाप्रभुजी बोले! उनकी जगह अपन होते तो सीधो यों ही कह देते "तु कौन कहवेवालो है? हम तो श्रीवल्लभके साक्षात् वंशज हैं. सब ही वल्लभरूप हैं. तू तो दुष्ट अहङ्कारी है!" तो समझे के नहीं अपन-अपनेमें कितनी अ.-म. है वो जान नहीं पावे हैं.

आज देखोगे तो प्रायः ९० प्रतिशत् वैष्णवन्‌में ये भाव घर कर गयो है के "ठाकुरजी क्या महाराजके बापके हैं के उनकुं घरमें बंद करके रखे हैं!". अरे भाई, ठाकुरजी यदि महाराजके बापके नहीं तो क्या तेरे बापके हैं! जाकेलिये ठाकुरजीके दर्शन-मनोरथ करनो चाह रह्यो है? तो उनकुं अपने घरमें क्यों नहीं पधरा जावे है? यहां-वहां भटक क्यों रह्यो है? महाराजसुं झघड़नो ये कहके के "ठाकोरजी बापना छे के घरमां गोंधीने राख्या छे!". ठाकुरजीमें इतनी ममता है तो नालायक तु ठाकुरजीने घरमां पधरावीने तेमनी तेवा

केम नथी करतो! ऐसो अपन कहें तो कहेगो के "सेवा तो नथी थई शकती".

आज अपने ये हाल हैं के अपनी अ.-म.को अनुपात न महाराज जाने है, न वैष्णव जाने है, न शास्त्री जाने है, न ट्रस्टी-भ्रष्टी जाने हैं और न मुखिया जाने है... पर सभी दीपक रागकी महेफिलमें एक-दूसरेकुं कूट रहे हैं. ऐसो भयङ्कर खेल चल रह्यो है.

ये खेल भयङ्कर या लिये और जादा हो गयो है के यामें सबकी अ.-म.के अनुपात बुरी तरह बिगड़े भये हैं. श्रीमहाप्रभुजी अपनी अ.-म.को समनुपाती विनियोग प्रभुसेवामें करवानो चाह रहे हैं. पर अपनकुं तो खुद अपने अ.-म.को अनुपात ही जब पता नहीं चले है तब दूसरेकुं क्या समझा पायेंगे! श्रीमहाप्रभुजी समझानो चाहें हैं के तुम कोई दूसरेको सहारा लो. आज श्रीमहाप्रभुजी जाके सहारा लेवेकी जो योग्यता जांचनेकी कहे हैं वापे अपन खरे उतरनेमें एक तरफ कतरानो चाहें हैं दूसरी तरफ गुरुपदके लाभ भी छोड़नो नहीं चाहे हैं. छल गई अपनी अ.-म. अपनेकुं पाछी!

हकीकतमें याकुं तुम हाई जंप् के दृष्टान्तसुं समझ पाओगे. हाई जंप् में ऊंचाईपे एक बांस रख दियो जाय है. वा बांसकुं उतनी ही ऊंचाईवाले बांसके सहारासुं कूदवेको होवे है. कूदवेवालो दूरसुं दौड़के आवे, बांसके पास पहुंचके अपनो बांस जमीनमें गढ़ावे और वाके सहारसुं ऊंचो होके कूद जाय. तो सोचो के या प्रक्रियामें कितने फेक्टर्स् काम कर रहे हैं? सोचो तो सही.

एक तो ऊंचाईपे रख्यो भयो बांस है. दूसरो यदि कूदवेको बांस उतनी ऊंचाईको नहीं है तो खिलाड़ी वाके ऊपरसुं कूद नहीं पायगो. अब बांस पर्याप्त लंबो है फिरभी खिलाड़ी उचित अन्तरसुं

दौड़के नहीं आवे तो भी वो कूद नहीं पायगो. तो देखो यामें कई चीजें एक साथ काम कर रही हैं. वो सब फेक्टर्स् सही पॉइन्ट्पे सिंक्रोनाइज़् हो गये तो तुम ममताके बेरियर् कुं पार कर जाओगे. अहन्ताको बांस, ममताकी बेरियर् और "सेवाकृतिर् गुरोराज्ञा"की स्पीड् ये सब समनुपाती भये तो तुम पार कर जाओगे.

ये अनुपात व्यक्तिके अ.-म.के अनुपातके हिसाबसुं अलग-अलग होयगो. उदाहरणतया यदि चूहाकुं दो हाथ ऊंचो कूदनो होवे तो वाकुं दौड़वेकी जरूरत नहीं पड़ेगी पर अपने शरीरके अनुपातके हिसाबसुं मनुष्यकुं उतनो ऊंचो कूदनो होयगो तो वो कूद नहीं पायगो. मनुष्यके शरीरके रिफ़्लेक्सिस् जानवरके जैसे शक्तिशली नहीं होवे है. व्हेल मछली जमीपे चलवेवालो पशु हतो. जमीनपे जब भूखो मरने लग्यो तब वाने आहारकेलिये समुद्रमें उतरनो शुरु कियो. कालक्रममें वो बदलके पशुमेंसुं मछली बन गयो. चूहा जैसे जानवरन्ने आत्मरक्षाकेलिये उछलनो शुरु कियो और कालान्तरमें चमगादड़ बन गये. ये सब दीपक रागके खेल हैं. कछुआ-मगर जलचर हैं. उनमें मछलीकी तरह अपने शरीरपे अंडा चिपकावेकी सिफत नहीं होवे है यालिये कछुआकी मादा जमीनपे अंडा देवे है. तटपे अंडा देके उनकुं रेतसुं ढंकके वो पाछी जलमें चली जाय है. जब अंडामेंसुं कछुआ बाहर आवे है तब उनके निकलवेकी राह देखके उनकुं खावेकेलिये चील आकाशमें मंडराती होवे है. अब यामें आश्चर्यकी बात ये है के अंडामेंसुं निकलते बच्चाकुं कौनसो गुरु ये सिखावे जावे है के वाको स्थान जलमें है! और दूसरी बात के जब बच्चा जलकी ओर जातो होवे है वा बखत वाकुं ये रहस्य भी पता चल जावे है के क्योंके मैं चल रह्यो हू वालिये चील मोकुं देख सके है. यालिये जब चील मंडराती होवे है वा बखत वो स्थिर पड़्यो रहे है. और जब चील दूर चली जाय तब समुद्रकी ओर दोबारा भागवे लगे.

ऐसी ये दीपक रागकी रेस है. कछुआको बच्चा पहले समुद्रमें

जायगो के पहले चील वाकुं झपट लेगी. "यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन, तदा कालप्रवाहस्था देहचित्तादयोऽप्युत, सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मान् इति मतिर् मम" वा तरहकी झपट चल रही है. या झपटमें जो जीते सो जीते. यामें न तो गुरुकी जरूरत है न चेला होवेकी. ये अहन्ता ये ममता के "समुद्रएव शरणं मम"के आश्रयको बोध वाके सेल् में कहांसुं आयो? जेनेटिकलि आयो के एन्वायर्नमेंटलि आयो? सच बात तो ये है के एन्वायर्नमेंट् सेल्में एंटर् भयो है. ये दीपक रागको स्ट्रक्चर् है. जो अपनकुं बाहरसुं मिल रह्यो है. वो अपने भीतर कोडीफाय् होके फिर बाहर भी प्रकट हो रह्यो है. बाहरसुं भीतर जानो और भीतरसुं बाहर आनो या तरहको अ.-म.को जो चक्र है वा तरहसुं ये खेल चल रह्यो है.

हरेक प्राणीमें वो प्रेम रह्यो भयो है श्रुति कहे है "न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" आत्मकामके कारण सब चीज प्रिय होवे है. "अहम् आत्मा आत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि, अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर् यत्कृते प्रियः". भागवतने और श्रीमहाप्रभुजी ने अ.-म.के कोड और एन्वायर्नमेन्टल् प्रेशर के तहत ये निर्धारित कियो के "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः" और "कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता, चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धचै तनुवित्तजा." अ.-म.के जो जेनेटिक् कोड् अपने भीतर हैं जो प्रेमकुं सर्वाय्वल् केलिये अवसर देनो चाह रहे हैं वाकेलिये ये सेवासम्बन्धी इन्स्ट्रक्शन्स् हैं. वाकेलिये गुरुकी जरूरत है. अपने भीतर ये सब एन्कोडेड् है पर अपन वाकुं डीकोड कर नहीं पा रहे हैं. यासुं अपनकुं कोई गुरुकी जरूरत पडेगी.

- यालिये श्रीमहाप्रभुजीने थोड़ी सावधानी और थोड़ी गेंबलिंग्वालो फेक्टर् वापरके कही के तुम जा संसारमें जी रहे हो वामेंसुं निकलवेकी बात मैं तुमसुं नहीं कह रह्यो हूं पर वा संसारमें कृष्णकुं पधरावेकी

बात कह रह्यो हूं. कृष्णकुं संसारमें पधराके तुम जीनेकेलिये तैयार हो तो शायद तुम्हारे रिफ्लेक्स चूहा-बंदर जितने मजबूत नहीं होयेंगे तो भी तुमकुं अहन्ताको डंडा मिल जायगो के जाके सहारे तुम ममताकी बाधाकुं सेवाकी क्रियाके सहारे लांघ जाओगे. यासुं "सेवाकृतिर् गुरोः आज्ञा बाधनं वा हरीच्छया, अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्". ये अ.-म.को आखो खेल श्रीमहाप्रभुजी अपनकुं समझा रहे हैं. वामें गुरुकी आवश्यकता कहां है और कहां नहीं है उन सब रहस्यकुं भी अपनकुं समझनो चहिये.

"बाधनं वा हरीच्छया" जब श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं तब अपनी इच्छाको भी बाध आप कर रहे हैं के नहीं! हरीकी इच्छासुं गुरुकी आज्ञाको बाध हो सके है. जैसे कल आप लोगनमें चर्चा हो रही हती के पुष्टिमार्गमें वेदवत् प्रमाण कौनके वचन मान्य हैं. तो मैं आपकुं बता दऊं के श्रुतिवत् प्रमाण वचन श्रीमहाप्रभुजीके हैं ये बात अपन मान रहे हैं, पर श्रीमहाप्रभुजीकुं ऐसो भ्रम नहीं है के मेरे वचन श्रुतिवत् प्रमाण हैं. यदि आपके मनमें ऐसो भरम होतो तो "बाधनं वा हरीच्छया" ऐसी आज्ञा आप कभी नहीं करते. श्रीमहाप्रभुजीके मनमें तो केवल एक ही बात है "यथा-यथा हरिः कृष्णो मनसि आविशते निजे तथा-तथा साधनेषु परिनिष्ठा विवर्धते."

श्रीमहाप्रभुजीको सारो प्रोग्राम वा कृष्णकुं खोजवेको है, न तो श्रीमहाप्रभुजीको खोजवेको है, न श्रीगुसांईजीकुं खोजवेको है, न श्रीगोकुलनाथजीकुं खोजवेको है और न हम गुसांइनकुं खोजवेको है. ये सारो प्रोग्राम कृष्णकुं खोजवेको है. और कृष्णप्रेम अब वो कैसे विद्यमान् है, वामें तुम्हारेपास क्या फेसिलिटि अवेलेबल् हैं वो न तुमकुं पता है न हमकुं पता है. अपन सब एक तरहकी गेंब्लिंग् थोड़ी बहुत ट्रायल् एरर् सुं कुछ काम कर रहे हैं. सफल हो जायगो तो बहुत मिलेगो, खोयो तो कुछ खोनो नहीं है. पर शर्त पाछी

श्रीमहाप्रभुजीकी एक है के श्रीमहाप्रभुजीने बतायो है वा तरहसुं करोगे तो श्रीमहाप्रभुजी *रिस्पोन्सिबल्* हैं. अन्यथा तो तू जाण और थारो राम जाणे.

इन सबके पीछे ईश्यु ये है के श्रीमहाप्रभुजी शास्त्रको अवलोकन करके अपनकुं कह रहे हैं के मोकुं शास्त्रको तात्पर्य यां तरहसुं समझमें आयो है के "शास्त्रम् अवगत्य मनो-वाग्-देहैः कृष्णः सेव्यः". कल श्रीनवनीतप्रिय शास्त्रीजीने या वचनके विषयमें कही हती के यामें केवल मन-वाणी और देह ही कहे हैं तनुवित्तजा नहीं कही है. सच बात है. तनुवित्तजा तो नहीं कही है. पर समझो के ये वचन सिद्धान्तवचन है कर्तव्योपदेश नहीं है. ये इतनी जनरल् प्रिमाइस् है के जामेंसुं सारे कन्क्ल्युज़न् ड्रॉ होवेवाले हैं. जैसे ऑल् मेन् आर मॉर्टल् विधानमें ये नहीं कह्यो जा रह्यो है के सोक्रेटिस् इज़ मेन ओर नोट् न वामें ये कह्यो जा रह्यो है के सोक्रेटिस् इज़ मॉर्टल् ओर नोट्. ऐसे ही "कृष्णसेवा सदा कार्या... तत्सिद्धयै तनुवित्तजा" वचनमें तो धेरफोर सोक्रेटिस् इज़ मॉर्टल् वालो कन्क्ल्युज़न् ड्रॉ हो रह्यो है या रहस्यकुं समझो. "शास्त्रम् अवगत्य... कृष्णः सेव्यः" वो जनरल् प्रिन्सिपल् है के शास्त्रकुं समझो, मन-वाणी-देहसुं कृष्णकी सेवा करो... या सिद्धान्तकी अनेक मायनर प्रिमाइस् हैं जैसे "गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः", "कौण्डिन्यो गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनञ्च तद्, भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यद् इष्यते" "तत्सिद्धयै तनुवित्तजा" आदि. और इन सबको कन्क्ल्युज़न् है "कृष्णसेवा सदा कार्या" है. या निष्कर्षपे आवेकेलिये पूर्वोक्त मायनर प्रिमाइस् श्रीमहाप्रभुजी वापर रहे हैं. मेजर् प्रिमाइस्में मायनर प्रिमाइस्की सारी बातनकुं कहनो जरूरी नहीं है वालिये वहां 'तनुवित्तजा' नहीं कह्यो है. कोई भी लॉजिक् ऐसे ही तो घड़ी जाय है. पहले मेजर् प्रिमाइस् घड़ी जाय फिर वाकी शृंखलामें मायनर प्रिमाइस् घड़ी जाय. फिर वाको कन्क्ल्युज़न् निकाल्यो जाय. ऐसे ही श्रीमहाप्रभुजीने सर्वनिर्णयमें मेजर् प्रिमाइस् दी

है, षोडशग्रन्थनमें मायनर प्रिमाइस् और कन्क्ल्युज़न् बताये हैं, स्वसिद्धान्त विनिश्चय बताये हैं.

समझ रखो के श्रीमहाप्रभुजी श्रीगोपीनाथजी और श्रीप्रभुचरण के ग्रन्थनमें कोई भेद नहीं है. उन ग्रन्थनकुं अनुसरवेकी अधिकारितामें कोई भेद नहीं है. बस उनके स्टेप्स् अलग-अलग हैं. कौनसे स्टेप्पे कौनसो ग्रन्थ आयो है वाकुं समझनो चहिये. ग्रन्थनकुं यदि अपन उलटे स्टेप्सुं पढ़ोगे तो गड़बड़ी होनी ही है. या श्रीमहाप्रभुजीके वचननकुं आधारवाक्य, मध्यवाक्य और निष्कर्षवाक्य के क्रमसुं यदि पढ़े जांय तो सारी बात सरलतासुं समझमें आ सकेगी. परन्तु यदि उलट-पुलट क्रमसुं पढ़े जांय तो फिर सन्देह होनो स्वाभाविक है क्योंके दीपक राग तो दुनियामें छिड़्यो ही भयो है.

गुरु-आज्ञाकी आवश्यकता श्रीमहाप्रभुजी सेवामें कह रहे हैं प्रेममें नहीं कह रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजी तहेदिलसुं ये बात स्वीकारे हैं के प्रभुसेवा कैसे करनी ये बात शिष्य समझ नहीं सके है या लिये आरम्भमें वाकुं गुरुकी आवश्यकता है. यद्यपि दूसरे सन्दर्भमें कही गयी है पर एक प्रसिद्ध उक्ति है "शास्त्राणाम् उपयोगो हि यावन्मन्दरसाः जनाः, रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं नच क्रमः". आदमी जब मन्दरस है तो शास्त्रको उपयोग है. यदि शास्त्रको उपयोग है तो गुरुको भी उपयोग है. "रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं नच क्रमः."

अपन कहे हैं के श्रीमहाप्रभुजी श्रुतिकल्प हैं, गुरु हैं. एक बात समझो के यदि अपनी भक्ति व्रजभावकी भक्ति है तो सोचो के गोपीजननने कौनसे गुरु किये हते? गोपीजननने कहां ब्रह्मसम्बन्ध लियो हतो? गोपीजन कौनसुं पढ़े हते? "ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासीत महत्तमा, केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो खगा मृगाः, येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा". उनमें रतिचक्र प्रवृत्त हतो शर्त बस ये है. "केवलेन हि भावेन" उनको भाव निर्दोष हतो.

आज तो जो समझने आयो होय वाको भाव भी दूषित है और जो समझावे जा रह्यो है वाके भाव भी दूषित हैं! ऐसो दीपक राग चल रह्यो है. ऐसेमें बहुत सावधानी बरतनेकी जरूरत है. वो सावधानी कैसे बरती जा सके है? श्रीमहाप्रभुजीके वचननूसुं. क्योंके ये रहस्य श्रीमहाप्रभुजीने अपनकुं दियो है करके अपन श्रीमहाप्रभुजीकुं श्रुतिकल्प मान रहे हैं. क्या ये रहस्य अपनी सूझ है? नहीं है.

अब जवाब दो के श्रीगोपीनाथजी और श्रीगुसांईजी गुरु हैं के नहीं हैं? एक बात समझो के यदि भूलमें भी अपनने श्रीगोपीनाथजी और श्रीगुसांईजी के गुरुत्वकुं इन्कार कियो तो आज अपन जिन ग्रन्थनूकुं श्रीमहाप्रभुजीके कह रहे हैं वो श्रीमहाप्रभुजीके ही हैं. वाकी क्या गॅरेंटी है? आज अपन या बातकुं अच्छी तरह जाने हैं के 'सुदर्शनकवच' ग्रन्थ श्रीमहाप्रभुजीके नामपे चढा दियो गयो है. अपन जाने हैं के 'अष्टाक्षरनिरूपणम्' ग्रन्थ श्रीगुसांईजीके नामपे चढा दियो गयो है. ये तो पांचसो सालमें इतनो घोटाला भयो है. आवते पांचसो सालमें और पचास बनावटी ग्रन्थ अपने आचार्यनूके नामपे चढाये जा सके हैं. या दीपक रागकी महेफिलमें क्या-क्या नहीं हो सके है? अपन आज जिन ग्रन्थनूकुं श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थके रूपें जान पाये हैं वामें प्रमाण उन ग्रन्थनूपे लिखी गयी श्रीगुसांईजी आदि पूर्वाचार्यनूकी टीका ही तो हैं. वाके अलावा अपने पास दूसरो प्रमाण क्या है? तो समझो के या ओर्डर् के तहद् अपन श्रीमहाप्रभुजीकुं श्रुतिकल्प मान रहे हैं.

श्रीमहाप्रभुजीको खुदको ऐसो दावा नहीं है के वो श्रुतिकल्प हैं. आपके अंदर तो इतनो दैन्य है के "अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वैदवाक्यैः रामायणैः सहितभारत-पञ्चरात्रैः, अन्यैश्च शास्त्रवचनैः सह तत्त्वसूत्रैः निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव" कह रहे हैं. पर अपने साथ समस्या ये है के यदि श्रीगुसांईजीके वचननूकुं अपन श्रुतिकल्प नहीं मानेंगे

और केवल श्रीमहाप्रभुजीकुं ही श्रुतिकल्प मानेंगे तो ब्रह्मसूत्रको भाष्य अपने पास आधो ही रह जायगो. श्रीगुसांईजी विरचित शोधन और फलाध्यायको आधो भाष्य अपने पाससुं गायब हो जायगो. और यदि भूले-चूके कभी कोईने षोडशग्रन्थमें उपदिष्ट अपनी साधनाप्रणालीपे प्रश्न कर दियो के पुष्टिभक्तिमार्गीय साधनाप्रणाली व्याससूत्रसुं समर्थित नहीं है, तो सारो सम्प्रदाय चौपट हो जायगो. गाममें अपन कोईकुं मुंह दिखाने लायक नहीं रह जायेंगे. श्रीगुसांईजीने साधन-फलाध्यायके सूत्रनूपे भाष्य लिख्यो है. यासुं अपन दमखमसुं बोल सकें हैं. षोडशग्रन्थकुं कछु प्रमाणको आधार मिल रह्यो है.

ये बात अपनकुं श्रीगुसांईजीसुं मिल रही है. श्रीगुसांईजीकुं ये परम्परा श्रीगोपीनाथजीसुं मिली है. श्रीगुसांईजी श्रीगोपीनाथजीकुं वन्दन करते भये मङ्गलाचरणमें कहे हैं "यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत्, तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम्". यदि श्रीगुसांईजीके वचन अपनेलिये प्रमाण हैं तो ये मङ्गलाचरण भी अपनेलिये प्रमाण है. या स्थितिमें श्रीगोपीनाथजीकुं अपनी परम्परामेंसुं कैसे मायूनस् कियो जा सकेगो! यदि कोई परवर्ती आचार्य श्रीगोपीनाथजीकुं पुष्टिमार्गीय परम्परामेंसुं मायूनस् करनो चाहेगो तो पहले वाकुं श्रीगुसांईजीसुं उलझनो पड़ेगो. कोई परवर्ती आचार्य कोई कारणसुं श्रीगुसांईजीसुं उलझ न बैठे यालिये ही श्रीपुरुषोत्तमजीने "श्रीवल्लभप्रतिनिधिं तेजोराशीं दयार्णवं गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथम् आश्रये" लिख्यो.

श्रीगोपीनाथजीकुं वार्तामें जो मर्यादास्वरूप कह्यो गयो है तो समझो के अपनकुं मर्यादासुं कोई द्वेष नहीं है. ठाकुरजीको एक चरण , एक श्रीहस्त अपन मर्यादा ही माने हैं. अपने यहां सेवामें पुष्टि है तो पूजामें मर्यादा स्वीकारी ही है. तो मर्यादामार्ग दीखते ही वाकुं काटो ऐसो थोड़े है! वाकी मझा लेनेकेलिये मर्यादामार्ग है. तो समझ लो के अपने यहां श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगोपीनाथजी और श्रीगुसांईजी

ये आचार्यत्रयी है है और है ही. और ये तीनों आचार्य अपनेलिये श्रुतिकल्प ही हैं. याकुं इन्कार्यो नहीं जा सकेगो. और जो परवर्ती आचार्य इनके वचनन्के आधारपे प्रवृत्त भये हैं वो स्मृतिकल्प ही हैं. इनके वचनन्को प्रामाण्य आचार्यत्रयीके वचनन्के अविरोधसुं ही आयगो, स्वत: नहीं आयगो. ऐसे ही परम्पराको भी प्रामाण्य उनके वचनन्के अविरोधसुं ही आयगो, स्वत: नहीं आयगो. मोकुं और आपकुं अलग-अलग बातें अच्छी लग रही हैं तो वामें परम्पराके आधारपे निर्णय करनो चहिये. पर कोई भी स्थितिमें परम्परा पूर्वाचार्यन्के वचनन्सुं अधिक प्रमाण नहीं हो सके है. क्योंके परम्परामें कई भ्रष्टताएं घुसी भई हैं. जैसे गोस्वामीनुकुं पुरुषोत्तम माननेकी, ठाकुरजीकुं छोड़के बालकनुकुं कछु-कछु मानवेकी... ऐसी कोई भी परम्परायें आचार्यवचनन्में कहीं भी दिखलाई नहीं देवे है. ऐसी सब परम्परायें अप्रमाण हैं. आचार्यवचनन्सुं अविरुद्ध परम्परा प्रमाण हो सके है, वचनविरुद्ध परम्परा प्रमाण नहीं हो सके है. अभी मैं एक पुस्तक प्रकाशित करने जा रह्यो हूं वामें मैने लिख्यो है के जो मेरो खण्डन करें हैं उनके भी वचन यदि श्रीमहाप्रभुजीके वचनन्सुं अविरुद्ध मिलें तब मैं नित्य पाठ उन वचनन्को करूं हूं. और जो उनके वचन श्रीमहाप्रभुजीके वचनन्सुं विरुद्ध हैं उनको मैं खण्डन भी करूं हूं.

यहां तो भीष्मकी भक्ति है. लड़ेंगे भी, मरेंगे भी और पूजेंगे भी. यामें न कोई लाग-लपेट है और न कोई राग-द्वेष है. जो बात सिद्धान्तकी है तो है और जो गलत है तो गलतीकुं स्वीकारनेको अपनेमें माद्दा होनो चहिये. क्योंके यहां कोई परायो नहीं है.

वैष्णव अपने हैं अपन भी वैष्णवन्के हैं. गलती तुम वैष्णवन् भी की है, गलती हम गुंसाईन्ने भी की है. गलती कोई भी कर सके है. क्राइस्टकी बात याद करो. क्राईस्टने कही हती के जाने गलती नहीं करी होय वो पथ्थर मारे.

शास्त्रके तात्पर्यको सर्वप्रथम ज्ञान अपनकुं आचार्यत्रयीने दियो है यासुं उनकुं अपन श्रुतिकल्प माने हैं. वो ज्ञान अपनकुं जिनके द्वारा मिल्यो है उनकुं अपन स्मृतिकल्प मान रहे हैं. और जा परम्पराने वा ज्ञानकुं व्यवहारमें संभालके रख्यो है वाकुं भी आपन प्रमाण माने हैं पर स्मृतिकल्पसुं अविरोधि होवेपे ही. ऐसे ही मोकुं-आपकुं जो अच्छो लगे है वो भी प्रमाण हो सके है. पर कब के जब वो परम्परासुं अविरुद्ध होय, कौनसी परम्परा के जो स्मृतिसुं अविरुद्ध होय, कौनसी स्मृति के जो श्रुतिसुं अविरुद्ध होय!

ये श्रुति क्या है के जाको तात्पर्य कृष्णके अलावा और कोईमें नहीं है. ये श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तको सेट् अप् है. याकुं समझोगे तो अपने बहुत सारे प्रश्न अपने-आप समाहित हो जायेंगे.

दूसरे जो प्रश्न अपने मनमें पैदा होवे हैं वो अ.-म.के दीपक रागको खेल है. कहीं न कहीं अपनी अहन्ताको अंधेरा है कहीं न कहीं अपनी ममताको अंधेरा है जाके कारण अपन एक-दूसरेकुं वा अंधेरामें कूट रहे हैं. दीपक राग चल रह्यो है वामें कोई बुरी बात नहीं है. पर पकड़ो वाकुं के जो याकी महेफिल सजाके बैठो है, जो कूट रह्यो है वाकुं पकड़वेमें कोई फायदा नहीं है.

तीर्थयात्राको भी प्रश्न उपस्थित भयो तो वाके बारेमें भी समझ लो के श्रीमहाप्रभुजीके अनुसार तीर्थयात्रामें मुख्य तात्पर्य नहीं है. वहां भी तात्पर्य तो श्रीकृष्णमें ही है.

सेवाके विषयमें भी गुरुकी आज्ञाके पालनमें मुख्य तात्पर्य नहीं है पर कृष्णपरायण कैसे रह पानो यामें ही तात्पर्य है.

सेवा छोड़वेके प्रश्नके बारेमें भी श्रीमहाप्रभुजी याही बातपे

कायम हैं के तात्पर्य यदि कृष्णमें होवे तो कृष्णकी सेवा छोड़ी भी जा सके है.

ऐसे हर बातमें अपनो तात्पर्य कृष्णमें स्पष्ट होनो चहिये. कृष्णमें जब तात्पर्य नहीं है तो हर बात खोटी है.

वेदस्तुतिकी सुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुजीने यहां तक आज्ञा की है के जो शुद्धाद्वैत कृष्णसुं विरुद्ध जातो होय वो शुद्धाद्वैत खोटो और वाके बजाय भगवान् बुद्धको शून्यवाद सच्चो. क्योंके तात्पर्य कृष्णमें है शुद्धाद्वैतमें नहीं है. भाड़में गयो शुद्धाद्वैत.

श्रीमहाप्रभुजीमें ये कहनेकी हिंमत है के कृष्णमें तात्पर्य है तो सेवा सच्ची है और यदि कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो सेवा खोटी है.

श्रीमहाप्रभुजीमें ये हिंमत है के कृष्णमें तात्पर्य है तो भागवतकथा सच्ची और यदि कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो श्रीमहाप्रभुजी स्पष्ट आज्ञा करे हैं के "अन्यथा कथार्थमेव तैः यत्नः कृतः स्यात्". रासपञ्चाध्यायीमें ये प्रश्न उठ्यो है के भगवान् जब छुप गये तब गोपीजनन्ने भागवतकथा क्यों नहीं बैठाई. यदि भागवतसुं कृष्ण मिल जाते तो वो भी मंडप बनाके, भागवतव्यासकु बुलाके कथा करवा लेनी चहिये थी. कोईने ऐसो नहीं कियो. "रुरुदुः सुस्वरं राजन्! कृष्णदर्शनलालसा" खुद रोयीं पर कथा नहीं करवाई. क्यों? "कृष्णे एव तात्पर्यम्!" कृष्णमें तात्पर्य है तो कथा भी चलेगी नहीं तो कथा भी व्यर्थ है. कृष्णकथा कब व्यर्थ हो जावे? श्रीमहाप्रभुजीने आखो जलभेद ग्रन्थ वाकेलिये लिख्यो है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के कृष्णकी ही कथा सुनवेवालेकेलिये भी उतनी अपवित्र हो सके है के जितनो अपवित्र गटरको जल होवे है, यदि कथा आजीविकाकेलिये की जाती होय तो "जलार्थमेव गर्तास्तु नीचाः गानोपजीविनः". जा भागवतकेलिये श्रीमहाप्रभुजी कहे

हैं के वो भगवान्को रूप है वाही भागवतकी कथा गटरके जल जितनी अपवित्र भी हो सके है. क्यों हो सके है? श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं "परम् अत्र एको महान् दोषः... वृत्त्यर्थं यत्नो न कर्तव्यः" भागवतकुं पैसा कमावेको साधन बनायो वासुं वो कथा अपवित्र हो गई. भागवत कथाको तात्पर्य यदि कृष्णमें है तो वासुं बढ़के पवित्र कोई साधन नहीं हो सके है. "प्रेम्णो अन्यत् साधनं लोके नास्ति मुख्यं परं महत्, श्रीभागवतमेव अत्र परं तस्य हि साधनम्". भागवतसुं उत्तम कोई साधन है नहीं पर कृष्णमेंसुं तात्पर्य हट्यो नहीं और भागवतकथा गटर बनी नहीं. कृष्णमेंसुं तात्पर्य हट्यो तो भागवतकथा जब गटर बनी तो कृष्णसेवाको न जाने क्या बनेगो! सेस्पोल् ही बन गयो आखो.

आज हम गुसांई लोग कहवे लगे हैं के भगवत्सेवा प्रदर्शनार्थ की जा सके है. क्योंके अन्यथा जो वैष्णव सेवा नहीं कर सके हैं उनको उद्धार कैसे हो पायेगो! यदि या बातपे कायम हो तो जैसे आज गली-गलीमें गणपति बापा मोरिया हो रह्यो है ऐसे सेवा करवेवाले हर व्यक्तिकु कृष्णसेवाको प्रदर्शन करवेकी छूट दो. वो छूट तो देनी नहीं है. सेवाके प्रदर्शनमें पाछी खुदकी मोनोपोली रखनी है. तो पोल खुल गई न के तात्पर्य तुम्हारो कृष्णसेवामें नहीं है. तात्पर्य तुम्हारो कृष्णसेवाके प्रदर्शनसुं मिलती प्रतिष्ठा, पद या आर्थिक लाभ के एकाधिकारमें है. तो समझो के जब तुम्हारो तात्पर्य कृष्णमें नहीं है तो कृष्णसेवा गटरसुं भी ज्यादा गन्दी बन गई. "कृष्णसेवा त्यक्तव्या," यदि कृष्णमें तात्पर्य नहीं है.

यदि कृष्णमें तात्पर्य है तो झगड़ा भी अच्छो हो सके है. जहां श्रीमहाप्रभुजीने ये बात कही है के "गृहस्थितेर् उत्कृष्टत्वं न भगवदीयत्वमात्रेण, भगवता सह स्थित्वा भगवत्कार्यार्थं वा" वहां झगड़ाकी बात है. आप घर जाके सुबोधिनी देखियो. कृष्णमें तात्पर्य है तो

झगड़ासुं भी उद्धार हो जायेगो और तात्पर्य यदि कृष्णमें नहीं है तो प्रेम भी तुमकुं ले डूबेगो. अपन यालिये न तो प्रेमवादी हैं, न झगड़ावादी हैं अपन कृष्णवादी हैं. ''प्राकृता: सकला देवा: गणितानन्दकं बृहत्, पूर्णानन्दो हरिः तस्मात् कृष्णएव गतिर्मम'' ये श्रीमहाप्रभुजीको दृढ़तर सिद्धान्त है. या सूत्रकुं तुम पकड़ोगे तो महाप्रभुजीकी सब बात समझमें आ जायगी. ये सूत्र यदि खो गयो तो तुम्हारी पतंग ढीलमें कट जायगी. तात्पर्य यदि कृष्णमें नहीं है तो हर बात गलत हो सके है और तात्पर्य कृष्णमें है तो ऐसी बातें भी अच्छी हो सके हैं के जिनकुं कबूल करवेमें भी अपनकुं सङ्कोच होतो होय. मैं उन वार्ताकी डीटेइल्स् में नहीं जाऊंगो पर आप कभी वार्तानुकुं या दृष्टिसुं भी पढ़के देख लीजियो.

कृष्णमें तात्पर्य है तो कोई भी बात अच्छी हो सके है और कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो जप भी खोटो है, तप भी खोटो है, वैराग्य, तीर्थ, योग सब खोटे हैं. यदि कृष्णमें तात्पर्य है तो ''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच'' गीताको चरमोपदेश है. कृष्णमें तात्पर्य है तो धर्मको त्याग भी ठीक है ये श्रीमहाप्रभुजीको मत है. या सूत्रकुं नहीं पकड़ोगे तो पद-पदपे ठोकर खाते ही रहोगे. कोई प्रश्नको समधान कभी भी मिलवेवालो नहीं है. अपने सम्प्रदायकी सारी विकृतिएं, सम्प्रदायके सारे मिसइन्टर्प्रिटेशन्स्, सम्प्रदायके सारे कौभांड कृष्णमें तात्पर्य नहीं रहवेके कारण भये हैं. अन्यथा अपनो सम्प्रदाय अत्यन्त उज्वल है. एक बखत कृष्णमें तात्पर्य रखके चलोगे तो सम्प्रदायकुं अपन और उज्वलतम बना सकेंगे. शर्त बस एक है : तात्पर्य कृष्णमें लाओ, कृष्णमें लाओ, कृष्णमें लाओ!

अपन यहां बैठके कितने ही अर्थ पंक्तिनुके सोचते रहें, कितनी भी चर्चा कर लें, कितने ही सन्दर्भ सोच लें, तर्क कर लें यदि

कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो हाथमे कुछ आवेवालो नहीं है. और यदि कृष्णमें तात्पर्य है तो प्रत्येक पंक्तिको भी तात्पर्य मिल गयो, ग्रन्थको भी तात्पर्य मिल गयो, विवादको, संवादको, अनुवादको सबको तात्पर्य हाथ लग गयो ये समझ लो.

तात्पर्य कृष्णमें है गुरुमें नहीं है या बातपे ध्यान दिलावेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने कह्यो है ''तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित्''. या लिये नहीं के गुरु आवश्यक है या अनावश्यक है. तात्पर्य कृष्णमें है तो गुरुकु पकड़नो भी अच्छो है और तात्पर्य कृष्णमें है तो गुरुकु छोड़नो भी अच्छो है. तात्पर्य कृष्णमें नहीं है तो गुरुकु पकड़नो भी खोटो है क्योंके तुम्हारे कारण तुम गुरुकु डुबा रहे हो ''अन्धानुगान्धवद् उभावपि पतेताम्''. ऐसे ही तात्पर्य यदि शिष्यमें है तो ब्रह्मसम्बन्ध देवेवालो और लेवेवालो दोनो ही डूबेंगे. और यदि ब्रह्मसम्बन्ध देवेवालेको तात्पर्य कृष्णमें है तो दोनों तिर गये. इन सब बातनुमें रहस्य कृष्णमें तात्पर्य निभावेको है. या बातकुं समझावेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने गुरुके लक्षणमें ''कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरं, श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेद् जिज्ञासुः आदरात्'' कह्यो. तात्पर्य कृष्णमें है न कि गुरुमें. अन्यथा ''तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित् परिचर्यां सदा कुर्यात् तद्रूपं तत्र च स्थितम्'' क्यों कहते? अब तुम खुद बोलो के तात्पर्य कायमें है? कृष्णमें है. श्रीमहाप्रभुजीको तात्पर्य न तो गुरु होनो ही चहिये यामें है और न गुरु नहीं ही होनो चहिये यामें है. श्रीमहाप्रभुजीको तात्पर्य कृष्णमें है, बाप दाखव नहिंतर श्राद्ध करा. एकदम नगद सौदा है. कृष्णमें तात्पर्य है तो गुरु करनो भी जायज है, कृष्णमें तात्पर्य है तो गुरु नहीं करनो भी जायज है. कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो गुरु करनो भी नालायकी है और कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो गुरु नहीं करनो भी नालायकी है. ये चाहे गोस्वामीकी कथा होय, चाहे वैष्णवकी होय, या चाहे शास्त्रीकी कथा होय, चाहे कोई बापा-बापीकी कथा होय.

यहां तो बस एक ही कथा है कृष्णकथा कृष्णकथा और कृष्णकी ही कथा. दूसरी कोई कथा यहां है ही नहीं "कृष्णेएव तात्पर्यं नतु तीर्थपर्यटनादौ".

जहां वैदिक कर्मकी बात आयी थी वहां भी श्रीमहाप्रभुजीने ये ही बात बताई है के "श्रीगोपीजनवल्लभप्रीत्यर्थम् एतत्कर्मानुष्ठानम् अहं करिष्ये" पुनः कृष्णेएव तात्पर्यं सिद्धचति नवा?

ज्ञानकी बात है तो वहां भी आप आज्ञा करे हैं "माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः स्नेहो भक्तिः...". प्रभुके माहात्म्यको ज्ञान देवेवाले सब शास्त्रको तात्पर्य कृष्णमें है. यदि तुमने माहात्म्यज्ञानको तात्पर्य कृष्णमें समझ्यो तो तुम ज्ञानी हो अन्यथा अज्ञानी हो. श्रीमहाप्रभुजीको मूड़ समझो. समझोगे तो सारी बात समझमें आ जायगी और नहीं समझे तो स्वयं श्रीमहाप्रभुजीकी पंक्ति ही आपकुं भ्रमित करवेवाली बन जायेंगी.

तुमकुं भ्रमित होवेकेलिये न कुर्आनकी जरूरत है, न बाइबल्की. यद्यपि श्रीमहाप्रभुजीने ऐसो कोई वचन नहीं लिख्यो है पर, यदि मुखरतादोष नहीं होतो होय तो, श्रीमहाप्रभुजीकी ओरसुं मेरेमें तो ये कहनेकी भी हिम्मत है के यदि तात्पर्य कृष्णमें है तो बाइबल् और कुर्आन् भी तुमकुं भ्रमित नहीं कर सके हैं. क्योंके श्रीमहाप्रभुजीको स्पष्ट अभिप्राय है के जितने भी वाच्य अर्थ और जितने भी वाचक शास्त्र हैं, उन सबको अर्थ मूलमें कृष्ण ही है. बाइबल्-कुर्आन नये शब्द लायेंगे कहांसुं! "अथवा सर्वरूपत्वात् नामलीलाविभेदतो विरुद्धांशपरित्यागात् प्रमाणं सर्वमेव हि" कहवेवालो यदि कोई आचार्य है तो वो अपनो महाप्रभु है. महाप्रभुने कही है के कृष्णमें तात्पर्य है तो सारेके सारे वचन प्रमाण हैं. और कृष्णमेंसुं तात्पर्य खण्डित भयो तो कृष्णकथा भी अप्रमाण है. गटरके जल जैसी हो जा यी

है कृष्णकथा, यदि कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो.

कल एक और प्रश्न अपने सामने आयो हतो के म्लेच्छ भाषा बोलनी के नहीं? फिरसुं समझो के यदि कृष्णमें तात्पर्य है तो म्लेच्छ भाषामें भी कृष्ण बोल्यो जा सके है. "संस्कृतवाणी देवे कीधी तर प्राकृत काय चौरा पासूनी झाली!, अता तू या अभिमान भूली वृथा बोली काय काज, अतां संस्कृतांत किंवा प्राकृतांत ज्या भाषांत झाली कृष्णकथा तो च पावनताची तत्त्वकथा जाणावी" कृष्णकथामें तात्पर्य है तो सब भाषा पवित्र है. और यदि नहीं है तो संस्कृत भी अपवित्र है.

मैं वो श्रीमहाप्रभुजीको वचन दिखा सकुं हूं के जामें आपने ये कही है के जा वेदके वचनको अर्थ श्रीकृष्ण नहीं निकलतो होवे वो वेदवचन अप्रमाण है. और कृष्ण अर्थ निकलतो होवे तो बाइबल्को वचन भी प्रमाण है. बाइबल्को वचन प्रमाण है ये तो बहुत बड़ी बात है श्रीमहाप्रभुजी तो ऐसी बात कहे हैं के जाकुं सुनके आदमीकी बुद्धि ही चकरा जाय. श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के " 'अग्निः अनुष्णः' इत्यपि प्रमाणम्". "आग ठंडी है" ये वचन भी प्रमाण है यदि कृष्णमें तात्पर्य है. क्योंके आग कौन बन्यो? कृष्ण. ठंडो पदार्थ कौन बन्यो? कृष्ण. ऐसे कहके श्रीमहाप्रभुजी सारी लॉजिक्कुं दिवालिया घोषित कर रहे हैं.

लॉजिक्की बात छोड़ो यहां तो बुद्धिको दिवाला निकल रह्यो है. कोई जाके ये बात श्रीमहाप्रभुजीकु कहेगो तो श्रीमहाप्रभुजी निश्चित ये ही बात कहेंगे के यदि कृष्णमें तात्पर्य है तो बुद्धिको दिवाला निकल जाय वो भी अच्छी बात है. रावण महान् पण्डित हतो. अपन वाके जूताकी भी बराबरी कर नहीं सकें इतनो बड़ो पण्डित हतो. सकलशास्त्रको निष्णात हतो. पर वाको तात्पर्य सीतामें हतो,

सीतापतिमें नहीं हतो. तात्पर्य श्रीमें हतो श्रीनाथमें नहीं हतो यासुं वाको संहार श्रीरामकुं करनो पड़्यो. तो समझ लो के ये कुछ बेज़िक मूड्स् हैं श्रीमहाप्रभुजीके. इनकुं समझके यदि श्रीमहाप्रभुजीके वचनन्को व्याख्यान अपन करेंगे तबतो कुछ अर्थ हाथ लगेगो वरना श्रीमहाप्रभुजीके तो क्या परवर्ती व्याख्याकारन्के ग्रन्थन्को अभिप्राय भी समझमे नहीं आ सकेगो.

श्रीमहाप्रभुजीके व्याख्याकारन्में भी श्रीमहाप्रभुजीके अभिप्रायकुं लेके मतभेद भये हैं. पर बात समझो के वो मतभेद भी कृष्णमें तात्पर्य रखवेकुं ही भये हैं. उनके मतभेद आजके जैसे एक-दूसरेकी सृष्टि तोड़वेकेलिये होते मतभेद जैसे मतभेद नहीं हते. यासुं उनके बीचके विवाद भी प्रमाण हैं और अपने जैसेन्के संवाद भी अप्रमाण हो सके हैं, यदि कृष्णमें तात्पर्य नहीं है.

अपन यहां सेमिनार कर रहे हैं. भगवान न करे अपने बीचमें कोई ऐसी तरहको संवाद स्थापित हो जाय के जाको तात्पर्य कृष्णमें न होय तो समझो के अपने करम फूट गये. और यदि अपन एक-दूसरेसुं सहमत नहीं भये और अपनो विवाद चालू ही रह्यो पर तात्पर्य यदि अपनो कृष्णमें है तो श्रीमहाप्रभुजी अपन सबन्की ही पीठ थपथपा देंगे बेटा! बहुत अच्छी बात करी तुमने! मेरे खूब आशीर्वाद हैं तुमकुं. सौ वर्ष जीयो!

श्रीमहाप्रभुजीको एक मूड् है. यदि ये अच्छो लगतो होवे तो श्रीमहाप्रभुजीकुं मानो, नहीं लगतो होवे तो मत मानो. श्रीमहाप्रभुजी कोईकुं बुला नहीं रहे हैं (श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपकी ओर ध्यानाकर्षण करते भये) देख लो श्रीमहाप्रभुजीके श्रीहस्तकी मुद्राकुं. बस अपनी ये ही बात समझा रहे हैं. समझमें आती होय तो पास आओ. अपनो आचार्य तो श्रीकृष्णास्य है. श्रीकृष्णकी ही बात जो आपश्रीके दिलमें है वो

मुखमें आके बाहर आनो चाह रही है "अहम् आत्मा आत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिः यत्कृते प्रियः."

ये एक फ्रेमवर्क् है. याके तहद् वर्णाश्रमधर्मकी अनुष्ठेयता भी यदि कृष्णमें तात्पर्य है तो बहुत अच्छी चीज़ है. कृष्णमेंसुं तात्पर्य खण्डित भयो तो ये ही महान बुरी चीज़ हो जायेगी, पाप बन जायेगी. उदाहरणके तौरपे समझाऊं के कल जो प्रश्न उपस्थित भयो हतो के कौनकुं तिलक करनो कौनकु बिंदी करनी? तो समझो के ये सब विषय वर्णाश्रमधर्मके हैं, शास्त्रके हैं. शास्त्र स्वयं एक मर्यादा है. मर्यादाकी बात जहां भी आयगी वहां धाक-धमकी तो आवेगी ही. वाके बिना मर्यादा निभ ही नहीं सके है.

कल भूषणबावाने जो अपने आलेखपत्र बांच्यो वामें, मैं समझुं हूं वहां तक, ६०-७० प्रतिशत् वचनमें धाक-धमकीके ही हते. यों करोगे तो नरकमें जाओगो, यों करोगे तो यों हो जायगो... जैसे कोई तालीबान्के लोग कहते होंय ऐसे शास्त्रके वचन लग रहे हते. याको अभिप्राय समझो के मर्यादाको निरूपण ऐसे ही होवे है. नहीं तो मर्यादा समझमें ही नहीं आयगी. कानूनमें भी ऐसो ही होवे है. हर कानूनके साथ एक पीनल कोड होवे ही है. मतलब, यदि या कानूनके हिसाबसुं नहीं चले तो ये दंड होयगो. जैसे अभी सरकारने कह्यो है के रस्तापे जो थूंकेगो वाकुं १००० रुपया दंड भरनो पड़ेगो. अब विचारो के कोई १००० रुपया जितनो थूंके है? या वाकी सफ़ाईमें क्या १००० रुपया लग सके हैं? नहीं. पर मर्यादा तो कठोर होवे तो ही लोग सीधे चलें.

मैं जब भारतीय विद्या भवनमें पढ़तो हतो तब एक दिन मैं और मेरो मित्र बरामदामें बाहर खड़े हते. उतनेमें हमारो एक सहपाठी आयो और बरामदामें पानकी पिचकारी मार दी. मेरे मुंहसुं निकल

गई के देखो, कितनी गंदी बात है. ये सुनके मेरो मित्र वाके पास गयो और अत्यन्त विनयसुं वासुं पूछी क्या तुम्हारे पास रुमाल है. वाने कही के 'हां है'. मित्रने कह्यो "मोकुं जरा रुमाल दोगे, प्लीज़!" इतने विनयसुं वाने रुमाल मांग्यो तो वाने तुरंत रुमाल निकालके मेरे मित्रकु दे दियो. मित्र वापस आयो. जहां हमारे सहपाठीने पानकी पिचकारी मारी हती वो वाके रुमालसुं साफ करी और थेंक्स कहके रुमाल वाकुं वापस लौटा दियो! हम दोनों वा बखत तगड़े हते. और थूंकवेवालो बिचारो दुबलो-पतलो हतो यासुं बात बिगड़ी नहीं. पर विचार करो के ऐसी नरमाईसुं प्यारसुं क्या मर्यादा निभ सके? नहीं. मर्यादा तो "स्वच्छ मुम्बई ठेवा नहींतर १००० रूपीया भरा" ऐसे ही निभ सके. नहीं तो सब अमर्याद हो जायेंगे.

अपने यहां वार्तामें याके बहुत अच्छे खुलासा हैं. अपन वार्ताकुं गम्भीरतासुं नहीं पढ़े हैं ये अपने दुर्भाग्य हैं. पर वार्ता कितनी गम्भीर हैं वाको मैं आपकुं प्रमाण बताऊं. वार्तामें अनपढ़ रजोबाईने श्रीमहाप्रभुजी जैसे पुष्टिमार्गीय सर्वज्ञकी बोलती बंद कर दी. आपने कहलवाई के मेरे पिताको श्राद्ध है, घी भिजवाओ. वाने कही नहीं भिजवाऊंगी. आपने फिरसुं कहलवायो के जाके कहियो के श्रीमहाप्रभुजी मंगवा रहे हैं. वाने फिरसुं जवाब दियो के जा के कह दो के नहीं भिजवाऊंगी. तीसरी बार कहलवायो गुस्सा हो रहे हैं तब भी घी नहीं भिजवायो. अब क्या करनो. श्रीमहाप्रभुजीने श्रीलक्ष्मणभट्टजीको श्राद्ध अपने घरके घीसुं कियो. शामकुं जब रजोबाई आयी तो आप पीठ देके बिराज गये. वाने पूछी के मेरो क्या अपराध भयो. आपने कही तेरे पाससुं घी जैसी वस्तु मंगवावें वो भी तु भेज नहीं सके, कैसी सेवक है! रजोने कितनी विलक्षण बात कह दी! दस हजार शास्त्रके पृष्ठ पढ़ो तब भी समझमें नहीं आ सके ऐसी बात कही है. वाने कही के आपके यहां घीकी कौनसी कमी हती के आपकुं मोसुं घी मंगवानो पड़्यो? आपने कह्यो के हतो पर ठाकुरजीको

हतो. वाने कही के आपके यहां ठाकुरजीको हतो तो मेरे यहां कौनको हतो? आपके वहांको घी यदि आप पिताके श्राद्धमें नहीं वापर सकोगे तो मेरे यहांको कैसे वापर सकोगे? इतनो ही नहीं, रजोबाईने एक बात और कही के आपने यों क्यों नहीं कहलवायो के घी भिजवावेपे मेरे पुष्टिधर्मको बाध नहीं होयगो! ऐसो कहलवायो होतो तो मैं घी भिजवा देती. और जब आप गुस्सा हो रहे हो ऐसे कहलवाई तो गुस्साकी तो पुष्टिमार्गमें आवश्यकता नहीं है! आप गुस्सा भये तो मैंने ये जान्यो के आप कोई प्रवाहमार्गीय या मर्यादामार्गीय आज्ञा कर रहे होगे. क्योंके पुष्टिमार्गमें गुस्साको क्या स्थान! या लिये घी नहीं भेज्यो. श्रीमहाप्रभुजीके पास वाकी बातको कोई जवाब नहीं हतो. आपने वाकी बात सिद्धान्ततया स्वीकारी है.

हमारे साथ एक बार ऐसी घटना घटी. हमकुं फ्लेट खरीदनो हतो. हम फ्लेट देखवे गये. वा बिल्डिंगको बिल्डर वैष्णव हतो. वाने हमकुं देखते ही ना पाड़ दी के हमकुं महाराजनके साथ सौदा नहीं करनों. हम टकासो मुंह लेके वापस आ गये. यहां गुस्सा होवेको कोई कारण नहीं है. क्योंके ये लौकिक सम्बन्ध है पुष्टिमार्गीय सम्बन्ध नहीं है. यदि गुस्सा होवें तो मर्यादामार्गीय बात हो गई. एक दूसरो प्रसङ्ग बताऊं, हमारे यहां एक वैष्णव आतो. वाकु भेंट धरवेकी आदत नहीं हती. जब आवे तब आके खुदके खीसामें हाथ डालतो और मुठ्ठीमें पैसा भरके कहेतो "कृपानाथ एकी के बेकी?" बालक यदि एकी कहते और एकी संख्यामें रुपया मुठ्ठीमें होते तो भेंट धर देतो और बेकी होते तो वापस जेबमें रख लेतो. मोकुं वाके साथ ऐसे एकीबेकीके खेल खेलवेमें बड़ी शर्म आती. मैं वाके खेलमें कभी भाग नहीं लेतो. वो भी मोकुं कभी भी भेंट नहीं धरतो. एक बार मोकु १००० रुपैयाकी जरुरत पड़ी. मैने सोची सब बालकनसुं एकी-बेकी खेले है आज अपन भी ट्राय करके देखें. मैने वासुं बड़ी दीनतासुं कही के मोकु १००० रुपैयाकी आवश्यकता है. ये

सुनके वाने मोकुं बहुत बड़ो ब्रह्मज्ञान दियो के महाराज आप हमारे साथ एकी-बेकी तो खेलते नहीं हो तो रुपया क्यों उधार मांगते हो? मैं आपको रूपैया उधार नहीं दे सकता हूं. वाकी सच्ची बात हती. वामें गुस्सा होवेकी कोई बात नहीं थी. मैं जब वाके साथ ऐसे सम्बन्ध नहीं निभा रह्यो हूं तो वो भी मेरे साथ मनचाहो सम्बन्ध निभावेमें स्वतन्त्र है. अब यामें मैं वापे गुस्सा होऊं तो प्रवाहमार्ग हो गयो, पुष्टिमार्ग नहीं रह्यो. या बातकुं समझो.

तिलक कौनकुं करनो यापे अपन विचार कर रहे हते. या बारेमें व्यवस्था ऐसी है के तिलक द्विजकुं करनो चहिये. अब प्रश्न यहां खड़ो होवे है के द्विजत्वको निर्धारण कैसे करनो? जो त्रिकाल संध्या करतो होय, अग्निहोत्र करतो होय, स्ववर्णाश्रमानुसार आजीविका कमातो होय, वेदको स्वाध्याय करतो होय, शास्त्रानुसार शुद्धि जीवनमें निभातो होय इत्यादि इत्यादि नियमसुं रहतो होय तो द्विज है. अब विचार करो के आज त्रिकाल संध्या, अग्निहोत्र कौन करे है? स्ववर्णाश्रमके अनुसार आजीविका कौन कमावे है? तो विचार करोके द्विज कौन है? यदि द्विज नहीं है तो अपनकुं भी तिलक करनो के बिंदी लगानी? और अपने जैसे गुसांईके जो देवलकवृत्ति कर रहे हैं वो तो शूद्रसुं भी नीचे गये हैं. अब अपनकुं कौनसो तिलक करनो? क्योंके शास्त्र तो स्पष्ट कहे है के देवलकको कपाल तो चाण्डालके जैसो हो गयो. अब तो अपनकुं तिलक करनो ही नहीं चहिये. क्योंके शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार तो अब अपनकुं तिलक करवेमें पाप है, नहीं करें तो कोई अपराध नहीं है. तो समझो के मर्यादाकी स्थिति कितनी जटिल हैं.

मर्यादामें एक आज्ञा है तो वाके संग जुड़्यो भयो एक अपराध है. अपराध है तो वाके सामने एक दंड है. मर्यादाकी आज्ञा सब जगह ऐसी ही होवे है फिर वो चिकित्सापद्धति होवे, शिक्षाव्यवस्था

होवे, टेक्सेशनके लॉ होंवे, अथवा धर्म होवे... डॉक्टरके पास जाओगे तो वो डायाबिटिजके रोगीकुं क्या कहेगो. क्या ऐसे कहेगो के "भले शक्कर खाओ चिन्ता मत करो" के यों कहेगो के "शक्कर खाओगे तो मरोगे!" मर्यादाकी आज्ञा तो ऐसे ही दी जायगी. उन आज्ञानुकुं पालनो अपनी भी मर्यादा है. उन आज्ञाके पीछेको रहस्य भी अपनकुं विचारनो चहिये. जैसे गोपालने समझायो हतो के हर मर्यादाको एक आन्तर पक्ष भी होवे है. हर आन्तर पक्ष कोई मर्यादासुं रक्षित होवे है. शुद्धाद्वैत ब्रह्मवादको आन्तर रहस्य है : "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" और बाह्य मर्यादा क्या है? "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय". 'प्रजायेय' मतलब क्या? उच्चनीचभावेन जायेयम्. "उच्चनीचभावेन जायेयम्" को मतलब क्या? कोई पुष्टिजीव बन जाय, कोई मर्यादा बन जाय, कोई प्रवाही बन जाय, कोई कृत्य धर्म हो जाय, कोई अधर्म हो जाय. या तरहकी विविधता वा आन्तर पक्षमेंसुं प्रकट भई हैं के जामें कोई भेद है ही नहीं. जो कछु बाहर प्रकट भयो है वो मर्यादा है. इन भेदभाववाली मर्यादामें ही वो अभेदको रहस्य सुरक्षित है. आंखमिचौनी मर्यादामें ही तो खेली जा सके न! जाकुं खोजनो है वो अपनी खोज पावेकी मर्यादामेंसुं बाहर निकलके छुप गयो तब तो खेल ठप हो जायेगो. वो खोज पावेकी मर्यादाके भीतर छुप्यो भयो है यासुं खेल चल है. या सृष्टिके खेलको पाछो रहस्य ये है के जो खोज रह्यो है और जो छुप्यो भयो है वो एक ही हैं.

ये रहस्य अपनकुं उपनिषद्ने समझायो है. यदि तुमने खोज लियो है तो मर्यादाको कोई मतलब नहीं है. पर नहीं खोज पाये हो तब तो मर्यादा निभानी पड़ेगी. जो छुप्यो है वो छुप्यो रहे वामें खेलकी मर्यादा है और जो खोज रह्यो है वो खोजतो रहे वामें खेलकी मर्यादा है. यदि वो मर्यादा छोड़ दी जायेंगी तो सब लोप हो जायगो. करके अपने यहां कह्यो गयो के "लौकिकत्वं वैदिकत्वं कापट्यात् तेषु नान्यथा, वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः".

लौकिकत्व और वैदिकत्व अपने यहां कापट्यसुं है. 'कापट्यसुं' मतलब गामकु ठगवेकेलिये नहीं. 'कापट्य'को मतलब है के अपनी जो सहज वैष्णवता है वाकुं निभानेकेलिये जितनो लौकिक और वैदिक जरूरी है उतनो तो लौकिक-वैदिक अपन करेंगे. बाकी... अब आजकी तारीखमें कौनकुं कितनो लौकिक-वैदिक जरूरी है ये कौन बता सके है?

मैं ये बात रसिकभाईके पेपरके सम्बन्धमें कह रह्यो हूं. आपको तात्पर्य लौकिकता या वैदिकता में नहीं है पर वैष्णवताकु संभालनेमें है. या ही लिये अपन तिलक, छापा, कंठी धारण करे हैं, वेश-भूषाको भी आग्रह रखे हैं. कल शरदबावा कह रहे हते के श्रीपुरुषोत्तमजीने मुगलवेश धारण कियो हतो. कन्हैयाबावा कह रहे हते के वो मुगलको वेश नहीं हतो. बात समझो के वेश मुगलको होय, ब्राह्मणको होय के कोईको भी होय सवाल सिर्फ ये है के वा बखत वैष्णवताकु संभालनेकेलिये वो वेश जरूरी हतो... हमारे गोकुलनाथजी तातजी महाराज बड़ी अच्छी बात कहते के ठाकुरजीकु संभालनेकेलिये साड़ी पहेननी जरूरी होवे तो पहेर लेनी. अपनी मूछकी शर्म नहीं रखनी. तो बात समझो के सब बात जरूरी हैं कृष्णमें तात्पर्य होवे तो.

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं "पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः". तुम शादी करने जा रहे हो. औरतके साथ सम्भोग कर रहे हो. श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं "कृष्णेएव तात्पर्यम्". ये श्रीमहाप्रभुजीको एक दृष्टिकोण है. श्रीमहाप्रभुजीकी ये कृष्णतन्मयता है के यहां तक भी वो कृष्णकुं खोज रहे हैं के "पायोः मलांशत्यागेन शेषभागं हरौ नयेत्". जा बातकुं कहेवेमें अपन बीभत्सताको अनुभव करें, वाकुं कहेवेमें श्रीमहाप्रभुजीकु शर्म भी नहीं आ रही है देखो! शर्म भी नहीं आ रही है. निरोधलक्षण ग्रन्थमें ऐसी बातें करी जायें? करी जायें, कृष्णेएव तात्पर्यम्. "वैष्णवत्वं हि सहजम्" वैष्णवताके निर्वाहोपयोगी सारी लौकिकता और वैदिकता अच्छी है. पर वैष्णवाताकी विरोधी सारी लौकिकता और वैदिकता

पाप पाप और शुद्ध पाप है.

बस ये श्रीमहाप्रभुजीको अभिप्राय है. ये बात समझोगे तभी आपकुं "अङ्गीकृत्यैव गोपीशवल्लभीकृतमानवो अङ्गीकृतौ समर्यादः"को अर्थ भी समझमें आ जायगो. मानवके गोपीशवल्लभीकरणमें श्रीमहाप्रभुजी समर्याद नहीं हैं अमर्याद हैं. इन दो नामनूके बीचको कुछ विरोधाभास है वाकी खुबसुरतीपे ध्यान दो! जो श्रीमहाप्रभुजी अङ्गीकृतिमें समर्याद हैं वो ही गोपीशकुं प्रिय बनानेमें अमर्याद हो जावे हैं. वल्लभीकृतमानवमें जो आप अमर्याद हैं वाको ही निदर्शन यहां ये कहके कियो गयो है के "सेवाकृतिः गुरोः आज्ञा बाधनं वा हरीच्छया, अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्". गुरुकी आज्ञाको निःसङ्कोच उल्लङ्घन कियो जा सके है. गोपीशके वल्लभीकरणमें मर्यादाको उल्लङ्घन है और अपन जब मानवको अङ्गीकार कर रह हैं, *गुरुत्वेन*, वामें मर्यादाको अङ्गीकार है. ये आखी फ्रेमवर्क है. वो अङ्गीकरण क्या है? लौकिकता वैदिकता को काषट्य. उदाहरणसुं आपकु समझमें आयगो. जैसे ब्रह्मसम्बन्ध देनो, गुरु बनानो, सम्प्रदायको प्रवर्तन करनो ये सब मर्यादा हैं. इन सबमें धाक-धमकी है. ये अमर्याद विषय नहीं हो सके है. परन्तु भगवत्प्रेम यामें न कोई गुरुकी आवश्यकता है न कोई सम्प्रदायकी आवश्यकता है. ये तो पुष्टिजीव और पुष्टिप्रभुको आपसी विषय है. महाप्रभुजीको "अङ्गीकृतौ समर्यादः" नाम है वाको यदि कोई मेटाफर आपकुं चहितो होवे तो मैं आपकुं या तरहसुं दे सकुं हूं के जैसे वधूको हस्तमिलाप वरके साथ होनेसुं पहले वधूको हाथ पुरोहित पकड़ लेतो होवे है पर पकड़े है पकड़े रखवेकेलिये नहीं पर वाकु वरके हाथमें थमानेकेलिये. तो समझो के ऐसो हाथ पकड़नो अङ्गीकृतौ समर्याद है. और यदि वरके हाथमेंसुं झुटवेकेलिये वधूको हाथ पकड़े तो फिर वो *अङ्गीकृतौ अमर्याद* हो गयो. तब फिर प्रवाही लीला हो गयी. या सारेको रहस्य ये है के जो जीव आवे है वाकु भगवान्को प्रिय बनानो है, जैसे भी प्रिय बने, मर्यादा पालके बने, तोड़के

बने, जैसे भी बने ऐसे. श्रीमहाप्रभुजीको मिशन बस एक है के जीव और भगवान्‌के बीचमें ये जो दीपक राग छिड्यो भयो है वाकी महेफिल जमावेवालेकु पकड़ो. अब वो कैसे पकड़ सके है? सारे ओप्शन् खुले पड़े हैं. महाप्रभुजी कभी यों नहीं कहे हैं के भक्तिमार्गसुं ही मुक्ति मिलेगी या ज्ञानमार्गसुं ही मुक्ति मिलेगी. आप तो कहे हैं के कर्मसुं भी मिलेगी, भक्तिसुं भी मिलेगी, शिवसुं भी मिलेगी, गणपतिसुं भी मिलेगी. पर श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के तुमकुं यदि मेरे प्रोग्रामके तहद् अपनी अ.-म.को समनुपाती विनियोग करनो है तो मेरे हृदयको तो कृष्णके अलावा ओर कहीं तात्पर्य है नहीं. तुम शिवकुं भी भजनेा चाहते हो तो "कृष्णेएव तात्पर्यं" होनो चहिये. ज्ञान करनो चाहते हो तो "कृष्णेएव तात्पर्यं" होनो चहिये. और यदि कृष्णमें तात्पर्य नहीं है महाप्रभुजीको ऐसे "कृष्णभजनेऽपि न तात्पर्यम्" अभिप्राय स्पष्ट है. इतनी साफ-सुथरी बात अपने मनमें होनी चहिये. ये *अङ्गीकृतौ समर्याद* की बात है. वा मर्यादाकुं श्रीमहाप्रभुजी निभानो चाह रहे हैं, तोड़नो नहीं चाह रहे हैं, अङ्गीकारमें. यासुं ही श्रीमहाप्रभुजी अपने आपकुं भी इम्पोज़् नहीं कर रहे हैं पर "कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरं श्रीभागवतत्वज्ञं भजेद् जिज्ञासुः आदरात्" कह रहे हैं. परवर्ती टीकाकार भी यासुं ही कह रहे हैं के "कलेः बलिष्ठत्वेन अग्रिमेषु गुरुत्वाभावम् आलोच्य एतन्मार्गीय गुरुत्वं स्वस्मिन्नेव नियच्छन्त आहुः" कलिके कारण गुरुके लक्षण आगे होवेवालेनूमें घटित नहीं होते होयें तो गुरुको लक्षण श्रीमहाप्रभुजी अपनेमें कन्फाइन्ड कर ले रहे हैं. तात्पर्य वहां भी महाप्रभुजीमें गुरुपनो स्थापित करवेको नहीं है परन्तु *कृष्णेएव तात्पर्यम्* है.

ये मर्यादा श्रीमहाप्रभुजीने स्वीकारी है. यासुं "जनशिक्षाकृते कृष्णभक्तिकृद्" बने हैं. ये मर्यादा है आचार्यकी. "आचिनोति हि शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि, उपदेशयति अन्यांश्च तम् आचार्यं प्रचक्षते". क्या जरूरत हती? आचार्य होवेकी मर्यादाकुं पालवेकी महाप्रभुजीकुं?

पर आपने यह बात स्वीकारी है के मैं कोई बात अमर्यादित नहीं कहनो चाह रह्यो हूं. मैं अमर्यादित सम्बन्ध कृष्ण और कृष्णार्थिके बीच स्थापित करनो चाह रह्यो हूं. मेरे और तुम्हारे बीचमें अमर्यादित सम्बन्ध स्थापित करनो नहीं चाह रह्यो हूं. यासुं महाप्रभुजी वहां "आचिनोति हि शास्त्राणि"को आग्रह रख रहे हैं. यासुं "कृष्णसेवापरं वीक्ष्य... आदरात्" कुं महाप्रभुजी गुरुत्वेन स्थापित कर रहे हैं. क्योंके *कृष्णेएव तात्पर्यम्*

एक बड़ी मजेदार बातपे ध्यान दो के गुरुको लक्षण देते बखत महाप्रभुजीकुं गुरु याद नहीं आ रह्यो है. याद आ रह्यो है 'कृष्णसेवापरं'. परब्रह्म परमात्मा भगवान् कृष्ण श्रीमहाप्रभुजीकी वीकनेस् है. समझो तो सही के वे बताने क्या जा रहे हैं? "तत्र आदितः साधनानि आह". तो साधनानि आह के कृष्णम् आह? "आदितः साधनानि"में भी पाछो कृष्ण याद आ गयो. देखो ये महाप्रभुजीकी ब्यूटी है. गुरुको लक्षण बताने जा रहे हैं वामें उनकु दम्भादिरहितता पहले खयालमें नहीं आ रही है, भागवततत्वज्ञता खयालमें नहीं आ रही है. सबसुं पहले खयाल आ रह्यो है "कृष्णसेवापरं वीक्ष्य". *कृष्णेएव तात्पर्यम्* यासुं अब तो समझो के गुरु कृष्णकेलिये है, कृष्ण गुरुकेलिये नहीं है. क्योंके गुरु नहीं होय तोभी कृष्ण तो होनों ही चहिये.

वर्णाश्रम है तो कृष्णकेलिये है, वर्णाश्रम तोड़ेंगे तो कृष्णकेलिये तोड़ेंगे, कमा रहे हैं तो कृष्णकेलिये कमा रहे हैं, भीख भी मांग रहे हैं तो कृष्णकेलिये मांगेंगे. पर कृष्णके नामपे नहीं मांगेंगे. क्योंके कृष्णके नामपे भीख मांगी तो तात्पर्य कृष्णमें नहीं रहके भीखमें हो जायगो. कृष्णकेलिये भीख मांगेंगे पर कृष्णके नामपे भीख नहीं मांगेंगे. इन दो बातन्‌के भेद अपनकुं समझमें आने चहिये तब महाप्रभुजीको मूड़ अपन समझ पायेंगे.

यहां तक प्रतीकके पेपरके चौथे पेजको निरूपण अपनने देख्यो. पांचवे पेजपे श्रीमहाप्रभुजीकी "साकारव्यापकत्वाच्च मन्त्रस्यापि विधानतः" कारिकाको विवरण वाने दियो है. या सारे निरूपणसुं मैं जो बात समझानो चाह रह्यो हतो वो ये ही हती के वैसे ये जगत्के याथार्थ्यकी व्याख्यामें सब दर्शनन् एकदूसरेके सर बहुत बुरी तरहसुं दीपक रागकी महेफिलकी तरह फोड़ते रहे हैं. सो कैसे ?

एक सामान्य उदाहरणद्वारा बताऊं के आकारवादी कहे हैं के आकार ही परमार्थ है, द्रव्य अपरमार्थ है. द्रव्यवादी कहे हैं के द्रव्य ही परमार्थ है आकार अपरमार्थ होवे है. कर्मवादी कर्मकुं परमार्थ और द्रव्यकुं अपरमार्थ माने हैं. द्रव्यवादी कर्मकुं परमार्थ नहीं माने है. व्यापकतावादी व्यापकताकुं ही परमार्थ माने हैं और परिच्छिन्नताकुं अपरमार्थ माने हैं. परिच्छिन्नतावादी बौद्ध परिच्छिन्न वस्तुकुं ही परमार्थ माने हैं व्यापक जैसे ईश्वर, जाति, आत्मा आदिनुकुं अपरमार्थ माने हैं. ये बड़ो लम्बो दीपक राग गायो जा रह्यो है जो २५०० सालसुं मेहफिलमें खतम नहीं हो रह्यो है.

एक अपने महाप्रभुजी है के जिनने परमार्थके बाजूमें बैठके वाकुं पकड़्यो है के "साकारव्यापकत्वाच्च" वो ही साकार है और वो ही व्यापक भी है. झघड़वेवाले आपसमें एक-दूसरेकुं कूट रहे हैं क्योंके वो साकारकुं पकड़े तो व्यापक छटक जावे और व्यापककुं पकड़ें तो आकार कहीं दिखलायी देनो ही बंद हो जावे. श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के दीपक राग गानो होय तो गाओ पर श्रुतिने कही है के "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैव अमूर्तञ्च स्थितञ्च यच्च सच्च त्यच्च" दोनों ही वाके रूप हैं. साकार भी वो है व्यापक भी वो है. ऐसी साकारतामें मत उलझोके जामें व्यापकताकुं भूल जाओ. व्यापकताके पीछे ऐसे पागल मत हो जाओ के जामें तुम आकारकुं स्वीकार भी न सको. ये ही महाप्रभुजीके दर्शनको मुख्य तात्पर्य है.

प्रेमको वा तरहको प्रदर्शन मत करो जासुं के वो निषिद्ध तरहको कर्मकांड बन जाय. और सेवाकी क्रियाको तरहसुं अनुष्ठान मत करो के जो प्रेमविहीन शुष्क कर्मकाण्ड रह जाय. इन सब बातनुकुं सन्तुलित करवेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने "साकारव्यापकत्वाच्च मन्त्रस्यापि विधानतः, श्रीकृष्णं पूजयेद् भक्त्या यथालब्दोपचारकैः" ये बात कही है. यहां आप स्पष्ट आज्ञा करे हैं के प्रेमविरुद्ध कर्मकाण्ड, आकारविरुद्ध व्यापकता ये सब झगडाएं चल रहे हैं पर यामें तुम क्या समझोगे. आकार है तो *कृष्णे एव तात्पर्यं* व्यापक है तो भी *कृष्णेएव तात्पर्यं* प्रेम है तो *कृष्णेएव तात्पर्यं* और कर्मकाण्ड है तो भी *कृष्णेएव तात्पर्यम्* या बातकुं श्रीमहाप्रभुजी यहां लानो चाह रहे हैं.

याकुं प्रतीकने कैसे टेकल् कियो है वो मैं आपकुं बता रह्यो हूं : वी कन्सिडर् गोड् टु बि सर्वव्यापक ... शास्त्रविधि एन्ड पूजामन्त्र आर नोट पोसिबल फोर शेपलेस् एन्टिटी. कैसे पूजा करोगे ? निराकार वस्तुकी पूजा तुम कहां करोगे. जहां करोगे वहां तकलीफ है. याकी मजाक मैं हर बार ऐसे उडाऊं हूं. मैने एक बखत काउन्ट ड्राकुला पढ़ी तो मनमें बहुत दहशत बैठ गयी. पुस्तक पढ़ते डर लगवे लग्यो. अब कहां पढ़नी. सब जगह डर लगतो. अन्तमें मैने दीवारपे पीठ टिकाके पढ़नी शुरु की. क्योंके आजु-बाजु और सामने तो सब दिखलाई देतो और पीछे तो भीत हती. पढ़ते भये वामें प्रसङ्ग आयो वो कबरमें घुसे है और अचानक तेज आंधी आवे है. आंधीसुं कबरको दरवाजा धमाकसुं बंद हो जाय है. इतनो पढ़ते ही अचानक मेरे रूमको दरवाजा भी हवासुं बंद हो गयो. डरके मारे मेरे रोंगटा खड़े हो गये. तो समझो के जहां पूजा करोगे वहां आकार खड़ो हो ही जायगो. तो समझो के कोईकुं आकारसुं तो कोईकुं व्यापकतासुं भय हो रह्यो है. इन भयनुकुं अपन कृष्णकी व्यापकता स्वीकारके दूर कर सके हैं.

प्रेमके कारण जिनकुं स्वच्छन्दताको भय लग रह्यो है और कर्मकाण्डके कारण जिनकुं शुष्कताको भय लग रह्यो है, उनके भयको भी उपाय "साकारव्यापकत्वाच्च मन्त्रस्यापि विधानतः, श्रीकृष्णं पूजयेद् भक्त्या यथालब्धोपचारकैः" है. 'यथालब्धोपचार'में भी वही अ. - म.के समनुपाती विनियोगको सिद्धान्त बोल रह्यो है. जो तुमकुं उपलब्ध है वाके उपभोगसुं कृष्ण सन्तुष्ट है, कृष्णकी खुदकी कोई आवश्यकता नहीं है. अब एक बातपे ध्यान दो : कृष्णकी आवश्यकताकेलिये सेवा करनी और अपनी आवश्यकताकेलिये सेवा करनी यों दो खेमा बंट जायेंगे. कृष्णकी आवश्यकताकेलिये सेवा करनी ऐसो सिद्धान्त मानवेवालो सेवा करेगो तब खुदके पास नहीं होयगो तो गामसुं भीख मांगेगो, अखबारनूमें मनोरथनूके विज्ञापन छपवायेगो, मठडी-मोहनथालके समाधानकी लालचसुं सेठियानूकुं ललचायेगो. सारे उधम वो करेगो. और यदि मेरी आवश्यकताके कारण सेवा करनी होयगी तो यदि मोकुं आवश्यक ही नहीं लगती होयगी तो मैं सेवा ही नहीं करूंगो. या फिर "फूल नहीं तो फूलनी पांखडी" खुद भगवानूने गीतामें कही है के "पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति" एक पत्ता धरो, एक फूल रखो और एक जलकी लोटी रखो बस सेवा पत गयी. भगवान् जब इतनेमें सन्तुष्ट हैं तब ज्यादा खटपट करनेकी जरूरत क्या है! तो देखो दीपक रागको माथा फोडवेको चक्कर कैसो है?

यदि भगवान् पत्र-पुष्प-फलसुं सन्तुष्ट हैं तो अधिक सेवाकी आवश्यकता क्या है और यदि अपने हिसाबसुं सेवा करनी है तब तो बड़ी मात्रामें सब चीज-वस्तु जुटानी पडेंगी. तब सेवा कर्मकाण्डमें विकृत हुवे बिना रहेगी नहीं. कोईकुं भी दस्त लगवानी होय तो अपने यहांकी सेवाकी रीतकी पुस्तक पढ़वा दो. बिचारो खोड़ भूल जायगो. फिर कभी सेवा करनेको नाम नहीं लेगो. तो हर कर्मकाण्डके साथ ये तकलीफ है. अपन कहे हैं के मर्यादामार्ग बहुत जटिल है और पुष्टिमार्ग बड़ो सरल है. पर यदि सेवाकी रीत पढ़ोगे तो

लगेगो के मर्यादामार्ग उतनो कठिन नहीं है. मर्यादामार्ग कितनो सरल है? "सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पानि समर्पयामि नमस्करोमि" चलो छुट्टी. पूजा हो गई सम्पन्न. अब याके बीचको सन्तुलन कैसे सधेगो यदि श्रीमहाप्रभुजीको "श्रीकृष्णं पूजयेद् भक्त्या यथालब्धोपचारकैः" ये वचन न होय. देखो श्रीमहाप्रभुजीने कैसे प्रेम और कर्मकाण्ड के बीचमें सन्तुलन बनायो है. अब न प्रेममें विकार आ सके है और न कर्मकाण्डमें विकार आ सके है. क्योंके मेरे पास जो उपलब्ध नहीं है वासुं कृष्ण सन्तुष्ट होवेवालो नहीं है. एक बखत मैं वो पद्मनाभदासजीवाले कन्विक्शन् के साथ सेवा करूं के मेरे पास छोलाके अलावा दूसरो कुछ नहीं है तो मेरो मथुराधीश छप्पनभोगसुं राजी नहीं होयगो. और यदि मेरे पास छप्पनभोग है तो मेरो ठाकुर छोलासुं राजी नहीं हो सके है. ठाकुरजी कहेंगे के नालायक, तु मोकुं ठगे है! ये "यथालब्धोपचारकैः" के पीछेकी भावना है. ये महाप्रभुजीकी अन्तर्दृष्टि है.

ऐसे ही आकार और व्यापक कुं लेके बौद्ध और ब्राह्मण धर्म के, बौद्ध और चार्वाक के, बौद्ध और जैन के बीच २५०० सालसुं चलते आये विवादपे श्रीमहाप्रभुजीकी समग्रतावादी एक दृष्टि है, हॉलिस्टिक् एप्रोच है. वाके तहद् आप कहे हैं के "साकारव्यापकत्वाच्च...यथालब्धोपचारकैः".

"लौकिकत्वं वैदिकत्वं कापट्याात् तेषु नान्यथा, वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः" सुं श्रीमहाप्रभुजी ये अपनकुं समझानो चाह रहे हैं के वैष्णवता भी निभाओ, वैदिकता भी निभाओ और लौकिकता भी निभाओ. याकी कंडीशन् श्रीमहाप्रभुजीने ये बताई के लौकिकता - वैदिकता कपटसुं निभाओ और वैष्णवता सहजतासुं निभाओ. श्रीमहाप्रभुजीकुं पता है के आदमी ऐसी भी गिलिंडरी कर सके है के "लौकिकत्वं वैदिकत्वमेव सहजं, वैष्णवत्वं हि कापट्याात्". अब क्या पता चले के लौकिकता सहजतासुं है के वैदिकता सहजतासुं है और कपटसुं वैष्णवता है!

श्रीमहाप्रभुजी "जो भी हो तुम खुदाकी कसम लाजवाब हो" ऐसे हैं. तो महाप्रभुजी वाकेलिये कह रहे हैं के "यथालाभसन्तोष: करिष्यति". सेवामें ही नहीं अपनी लाइफस्टाईल् भी ऐसी बनाके बताओ जाको निर्णय महाप्रभुजीने यों बतायो : "प्राप्तं सेवेत निर्मम" अर्थात् प्राप्तं ममतया न सेवेत, प्राप्तस्य निर्ममतया त्यागमपि न कुर्यात्. जीवनशैली जब तुम अपनी पहले ऐसी बनाओगे तब तुमको वो प्रोग्राम् पता चलेगो के "लौकिकत्वं वैदिकत्वं कापट्यात्" और "वैष्णवत्वं हि सहजं" कैसो होयगो. प्राप्तं सेवेत निर्मम को प्रोग्राम यदि तुम्हारे जीवनमें नहीं है तो तुमसुं वैष्णवताको निर्वाह सहजतया हो नहीं सकेगो. कुछ न कुछ तुमकुं वैष्णवतामें गड़बड़ करनी पड़ेगी. ये ही बात यहां आ रही है "श्रीकृष्ण इज् द मोस्ट् एप्रोप्रिएट् ऑब्जेक्ट् ऑफ् वर्शिप् ... परफोर्मिंग कृष्णसेवा विथ् द प्रोसीड्स् ऑफ् अ चेरिटी इज़ नोट् एट् ओल एड्वाईज़्ड् क्योंके जब तुम चेरिटी पे सेवा निभा रहे हो तब वार्तामें आवे है के "तु सेवा करनो चाहे है के तांतीके ब्याजपे मोकों निभानो चाहे है". अस्वाभाविकतापे जब तक तुम अपनो काबू नहीं पाओगे तब तक तुम वैष्णवताकुं सहजतासुं निभा नहीं सकोगे.

अब व्यक्तिकेलिये जीवनमें स्वाभाविकता क्या है ये कोई नहीं कह सके है. और जा स्वाभाविकताकुं तुम या समाजमें रहके जीनो चाह रहे हो वामें हर आदमीकुं आपसुं सवाल करनेको अधिकार है के आप मेरे साथ स्वाभाविकतया बरत रहे हो के अस्वाभाविकतया. तो दूसरके सङ्ग जब बरतनेकी बात आयगी तब मर्यादा आयगी और उन मर्यादानकुं अपनकुं निभानी है. पर वैष्णवताकुं सहजतासुं निभानी है ये याके भीतर रह्यो भयो रहस्य है.

याके आगे पेपरमें साधनप्रकरणमें वर्णित देश - काल - साधनकी विफलताको निरूपण कियो गयो है. ये वैदिकताके कापट्यके सम्बन्धमें

आती भई बात है. एक सच्ची बात बताऊं हूं के मैं तहेदिलसुं मानुं हूं या रहस्यकुं. क्योंके जब महाप्रभुजी वा जमानामें आज्ञा कर रहे हैं "वर्णाश्रमवतां धर्मे मुख्ये नष्टे छलेन तु क्रियमाणे न धर्म: स्याद् अतस् तस्मान् न मोचनम्" तो मेरो मन महाप्रभुजीके या वचनसुं आश्वस्त है. ब्राह्मणोचित शास्त्रीय कर्म जो मोकुं करने चहिये वो आज मैं कर नहीं रह्यो हूं. वाको मेरे पास अच्छो स्पष्टीकरण है के सब कछु नष्ट हो गयो है तो अब मैं क्या करूं! पर सहसा कोई मोकुं कहे के तू ब्राह्मण नहीं है शूद्र है तो मेरे कान ऐसो सुनवेकेलिये तैयार नहीं हैं. ये मनके दीपक रागके खेल हैं. जहां कर्तव्यको प्रश्न है वहां मैं ये सोचु हूं के देश काल द्रव्य कर्म कर्ता सब छिन्न-भिन्न हो गये हैं. पर जब मेरो सवाल आयो तो मोकुं लगेगो के नहीं कछुक अभी भी बच्यो है. या लिये संध्या होवे के नहीं जनोई पहनुं हूं, ब्राह्मण होऊं के नहीं धोती-उपरणा पहनुं हूं, ब्राह्मण होऊं के नहीं पर गैरब्राह्मणके सामने अपनो ब्राह्मणत्व निभावेको प्रयास करुं हूं. ये अहन्ता है, ये ममता है देखो!

तो वैदिकताको कापट्य दो तरहसुं हो सके है. एक तो मैं या कापट्यको प्रयोग करके अपने ब्राह्मणत्वकुं बढ़ाऊं. श्रीमहाप्रभुजी कहेंगे के कृष्णमें तात्पर्य नहीं है तो ऐसो वर्णाश्रमधर्म तुमकुं नरकगामी बनायेगो. और या कापट्यसुं कृष्णमें तात्पर्य है तो महाप्रभुजी कहे हैं के चिन्ताकी कोई बात नहीं है.

अजगररूप यक्षने द्वापरके बखत जब युधिष्ठिरसुं पूछी हती के ब्राह्मणत्वके बारेमें तुम्हारो क्या खयाल है तब युधिष्ठिरने द्वापरके बखत ये जवाब दियो हतो के "जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामति:, सङ्करात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मति:". युधिष्ठिर कह रहे हैं के सब वर्णनमें साङ्कर्यके कारण कौन ब्राह्मण है और कौन क्षत्रीय, वैश्य या शूद्र है ये मैं समझ नहीं पा रह्यो हूं. तो विचारो के जब वर्णव्यवस्था

वा बखत खतम हो गयी तो वाके ५००० साल बाद क्या-क्या घोटाला नहीं भये होंगे! बहुतसे भये होंगे. अब उन घोटालान्में कैसे पता चले के कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र! कर्मणा ब्राह्मण, जन्मना ब्राह्मण, वृत्या ब्राह्मण ... शास्त्रकी मर्यादाएं देखें तो दिल दहल जाय "बंद कर शकील दास्तां अपनी सुननेवालेके दिल दहलते हैं". वेदको स्वाध्याय नहीं कियो तो तुम ब्राह्मण नहीं रहे, गायकटे है वा प्रदेशमें रहो तो ब्राह्मणत्व कैंसल्, या तो तुम कटो या गायकुं बचाओ. तो देखो ये सब विकट परिस्थितियां हैं.

बहोत साल पहले एक प्रोब्लेमेटिक् अमेरिकन फिल्म आई हती. अपने यहां वो प्रक्रिया अब शुरु भई है पर अमेरिकामें डेटिंगकी परम्परा बहुत पुरानी है. यामें अविवाहित नवयुवक और नवयुवति एक-दूसरेकुं डेट करें. घूमें-फिरें जासुकि कौनसुं शादी करनी वाको निर्णय हो सके. वा चक्करमें एक कन्या सगर्भा हो गई. मैं "अङ्गीकृतौ समर्यादो महाकारुणिकः" समझा रह्यो हूं हों! अब कानून वहांको ये है के अविवाहिताको बच्चा इल्लेजिटिमेट् मान्यो जाय. अब लड़का-लड़की दोनों मा-बापके पास गये. उनने सोच्यो के अब तो शादी ही समाधान एक समाधान है. शादीकी तैयारियें शुरु भई. तैयारी करते-करते बच्चाके जन्मवेको समय आ गयो. सब लोग पादरीकुं कहवे लगे के शादी जल्दी करवाओ नहीं तो बच्चा नाजायज कहवायेगो. क्योंके सरकारमें रजिस्ट्रेशन तब तक नहीं हो पावे के जब तक चर्चमें शादी नहीं हो जाय. पादरीकुं परिस्थिति देखके गभराहटके कारण पसीना छूट रहे हैं, लड़कीकुं पसीना छूट रहे हते, मां-बाप हो हल्ला मचा रहे हते. और जैसे ही पादरीने कह्यो के वेडिंग सोलोमनाइज्ड् सो ही बच्चा उंवा-उंवा करतो जनम जाय है.

यदि अपन शास्त्रके सामने खड़े होवें तो अपनी भी परिस्थिति यासुं अच्छी नहीं है. पसीनाएं छूट जायेंगे, एक बार शास्त्र पढ़के

देखोगे तो स्थिति पता चलेगी के जाको श्रीमहाप्रभुजी दुःखके साथ निरूपण कर रहे हैं "वर्णाश्रमवतां धर्मे मुख्ये नष्टे छलेन तु क्रियमाणे न धर्मः स्याद् अतस् तस्मान् न मोचनम्, अथापि धर्ममार्गेण स्थित्वा कृष्णं भजेत् सदा, श्रीभागवतमार्गेण स कथञ्चित् तरिष्यति". ये एक आखी पॉलिसी है, ये श्रीमहाप्रभुजीकी महाकारुणिकता है. अपनो सब व्यवहार इल्लेजिटिमेट् न हो जाय वाकेलिये महाप्रभुजी अपनकुं भागवतमार्ग दिखा रहे हैं के या विकट समयमें भी यदि तुम चाहो तो कुछ लेजिटिमेट् हो सके है. फिल्मके क्लाइमेक्स् में जैसे मिनिटन्को खेल हतो ऐसे यहां भी मिनिटन्को ही खेल है. आजकी परिस्थितिमें शास्त्रकी जितनी साधनाएं हैं वो सब इल्लेजिटिमेट् होने जा रही हैं. श्रीमहाप्रभुजीकुं भी ये सब देखके पसीना छूट रहे हैं के इन डेटिंग करवेवालेन्को क्या करनो. पर श्रीमहाप्रभुजी भी कोई तरहसुं सोलोमनाइज़ कर रहे हैं "अङ्गीकृतौ समर्यादो महाकारुणिको विभुः, अदेयदानदक्षश्च महोदारचरित्रवान्".

क्या होने जा रह्यो हतो वामें श्रीमहाप्रभुजीने क्या कियो है. जा बखत कर्म-ज्ञान-भक्ति सब खत्म होने जा रहे हैं वा बखत श्रीमहाप्रभुजी कृष्णाश्रयसुं वाकुं कुछ लेजिटिमेट् बना रहे हैं : "नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु पाषण्डैकप्रयत्नेषु कृष्णएव गतिर्मम". परिस्थितिकी गम्भीरता आप समझो के जा स्थितिमेंसुं श्रीमहाप्रभुजीने कृष्णाश्रयको एक मार्ग निकालके अपनकुं दिखायो है वाकुं भी जब अपन इल्लेजिटिमेट बनायें तो वासुं बड़ी विपत्ति और क्या हो सके है!

कमसुं कम वा कृष्णकुं तो लेजिटिमेट रहने दो. वा अपने सेव्यकुं, अपने सेव्यकी सेवाकुं, वा भजनीयकी कथाकुं, वा अपने सेव्यके लीलास्थलन्कुं, अपने सेव्यकी सेवाकी दीक्षाकुं, वा सेव्यकी सेवाके उपदेशकुं इल्लेजिटिमेट मत होने दो, वाकुं लेजिटिमेट रखो.

एक बात ध्यानसुं समझो के कृष्णको स्वरूप उननिषद् समझावे है के वो आत्माराम है, आप्तकाम है, आत्मकाम है. वाकुं कोईकी गरज ही नहीं है. वाके अलावा ओर कोइ है नहीं के जासुं वो कोईकी गरज रख सके. सर्वसमर्थ होते भये भी कृष्ण या विषयमें असमर्थ है. जो दूसरो है वो भी वाकी सर्वभवनसामर्थ्यको प्रोडक्ट् है. या ही लिये जब वो कोई दूसरेके साथ रमण कर रह्यो है तब भी वो आत्मरमण ही कर रह्यो है, जहां तक कृष्णको सवाल है. जब वो आत्मरमण कर रह्यो है तब सख्यलीलाको रमण, कान्तलीलाको रमण, स्वामिलीलाको रमण, कंसके साथ भयलीलाको रमण जो भी रमण कृष्ण जा भी तरहके भक्तसुं कर रह्यो है वामें वाके काउन्टर् पार्ट्स् गोपबालक, गोपी, यशोदा, पूतना, कंस, नन्द कोई भी ले लो; कृष्णकेलिये वे कोई भी खुदसुं अलग नहीं है. बावजूद वाके यदि कृष्ण उनसुं कोई अपेक्षा कर रह्यो है... माने जन्मसुं ही देखें तो ठाकुरजीकुं छोड़के यशोदाजी महेमाननवाज़ीकेलिये गयीं तब ठाकुरजीने अपनी अपेक्षाको इतनो भारी प्रदर्शन कियो के बैलगाड़ी पलट दी और माखनकी हांडीएं फोड दीं... तमाम ऊधम किये. कृष्णको ये विषयापेक्षाको प्रदर्शन क्या वाको स्वरूप है के वाको कापट्य है? अब ध्यानसुं समझोके यदि अपन कृष्णके स्वरूपकी मर्यादासुं देख रहे हैं तो कापट्य है. कापट्य समझमें आते ही शङ्कराचार्यके मतवाले सब कहेंगे के सब कछु मायिक है. लीलाकी मर्यादासुं देखें तो ये वाकी भक्तवश्यता है. भक्तवश्यता आते ही वाको कापट्य नहीं लगे है यथार्थता लगे है. यथार्थता आते ही कृष्णको स्वरूप खण्डित हो रह्यो है. वो ही दीपक राग पाछो यहां भी छिड़ गयो. यामें जो सिरफुटव्वल हो रही के कृष्णने यशोदासुं माखनकी अपेक्षा करी, कंसकुं मारवेकी अपेक्षा करी, सखानके सङ्ग गाय चरावेकी अपेक्षा करी, गोपीनके साथ रासकी अपेक्षा करी वो जो-जो अपेक्षाएं कृष्णने जाके साथ करी वो अपेक्षा यदि वाको कपट है तो माया क्यों नहीं है, और यदि यथार्थ है तो वाको स्वरूप खण्डित हो रह्यो

है. तो देखो भारी खेमाबंदी हो रही है.

एक महाप्रभुजी या खेमाबंदीको समाधान निकाल रहे हैं के स्वरूप अखण्डित रहते भये भी लीलामें खण्ड प्रकट हो सके हैं. लीलामें मर्यादा प्रकट हो रही है, स्वरूप अमर्याद है. कापट्य भी परमात्माके स्वरूपमेंसुं प्रकट भयो होनेसुं स्वरूपात्मक कापट्य है. अब कृष्ण जब कापट्य करे तब 'कापट्य' नहीं कहवावे 'लीला' कहवावे; अपन करें तो 'कापट्य' कहवावेगो.

अब यामें यहां साधनाके स्तरपे एक बहुत बड़ो ईश्यु खड़ो हो रह्यो है जो थियोलॉजि और रिलिजन केलिये एक प्रॉब्लेमेटिक् सब्जेक्ट् है. वो ये के क्या अपनी साधना परमात्माके साथ कियो जातो कापट्य है के लीला है. आओ महाप्रभुजीको स्टेन्ड देखें!

एक बाजु आप कह रहे हैं "किमासनं ते गरुडासनाय, किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय, लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं, वागीश किं ते वचनीयमस्ति" भगवानुकुं अपन क्या दे सके हैं? कुछ नहीं. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के "भगवति जीवैः नमनमेव कर्तव्यं, नाधिकं कर्तुं शक्यम् इति सिद्धान्तः". जीव भगवानुकुं मात्र नमन कर सके है ये भी थोड़े कन्सेशनल एप्रोचसुं कही गयी बात है. सच कहो तो नमन भी कैसे कियो जा सके है? भगवानुसुं भिन्न कोई होवे तो वो भगवानुकुं नमन कर सके. भगवानसुं व्यतिरिक्त यहां है कौन? कौन कौनकुं नमन करेगो? भगवानके अखण्ड शुद्धाद्वैतमें "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"में कौन कौनकुं नमस्कार करेगो. या ही लिये यमुनाष्टकमें टीकाकारनने कह्यो के जीव नमन भी नहीं कर सके है. भागवत भी याकुं कहे है के "सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये". और सचमुचमें तो ये भी कोई तरहको कपट है. सोचो के जहां आत्माकी अखण्डितता है वहां कौन कौनपे अनुग्रह करेगो.

फिर भी कोई एक लीला प्रकट हो रही है. स्वरूपसुं भिन्न प्रकारकी अपेक्षा और कर्म प्रकट हो रहे हैं उनकुं कपट-नाटक कहेनो के लीलाविलास कहेनो ?

फिनोमिना एक ही है पर 'बापकी औरत' कहनो के 'मां' कहनो ये तय करो. कपट-नाटक भी कह्यो जा सके है और वाकुं ही भगवान्के चिदानन्दको लीलाविलास भी कह्यो जा सके है. महाप्रभुजी कहे हैं भगवान्कुं जगत्को कारण मान लेवेसुं भक्ति कपट नहीं रह जायेगी. भगवान्की या कृतिकुं लीला मानोगे तो भक्ति प्रकट होयगी. क्योंके तुम कपट-नाटकके कपटसुं छूटके लीलाविलासमें विहरते हो जाओगे. तब तुम्हारी साधना भी कपट-नाटक न रहके भगवान्के साथ खेल्यो जातो खेल हो जायगो. भगवान् अपनसुं खेल रह्यो है. वो आप्तकाम है फिर भी अपने सामने अपेक्षा दिखा रह्यो है. अपन भगवान्कुं कुछ दे नहीं सके हैं फिर भी भगवान्सुं कहे हैं "रहिये मेरे ही महल अनत न जैये, शैया-सामग्री-वसन-आभूषण सबविध कर राखोंगी टहल". ये क्या है? कपट-नाटक है के सेवा-भक्ति है? सच कहो तो वाकुं कछु देवे लायक है ही नहीं. क्योंके स्तुतिसुं वाकी अनिर्वचनीयता खण्डित होवे है, तीर्थयात्रासुं वाकी व्यापकता खण्डित होवे है, भोग धरोगे तो वाको अभोक्तृत्व-साक्षित्व खण्डित होवे है तो जो-जो काम करोगे वामें वाको स्वरूप खण्डित हो रह्यो है. परमात्मा बिचारो परेशान है "जायें तो जायें कहां समझेगा कौन यहां दर्दभरे दिलकी ज़ुबां". ये परमात्माकी स्थिति है. यामें जो एक लीला वो प्रकट कर रह्यो है वाको लीलात्मक रिस्पोन्स देनो है के कपट-नाट्यात्मक जवाब देनो है ये निश्चित कर लो. दोनों काम किये जा सके हैं. यदि कपट-नाट्यात्मक रिस्पोन्स देनो है तो तनुवित्तजाके भाग करदो अहन्ता और ममता को अनुपात घटा-बढ़ा दो, अपने घरमें सेवा करनेके बजाय यहां-वहां हवेलीन्में भटकवे लग जाओ, आजीविकाकेलिये भगवत्कथा करो... तात्पर्य तुम्हारो

कृष्णमें नहीं रह जायगो. भक्ति तुम्हारो कपट-नाटक बन जायगी. और वाकुं ही यदि लीलात्मक रिस्पोन्स देनो है तो महाप्रभुजीने एक मर्यादा बता दी है "बीजदाढ्यर्प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतो अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः". तुमने वाकी लीलाको जवाब लीलासुं दियो तो एक खेल शुरु हो गयो, ऐसो खेल के जामें आनन्दके अलावा ओर कुछ प्रकट होनेवालो नहीं है. अब कोई तरहकी कुण्ठा रही नहीं. अपने यहां कह्यो जाय है के भक्त व्यापिवैकुण्ठमें जावे है. 'वैकुण्ठ'को मतलब होवे है : "कुण्ठायाः अभावो विकुण्ठः, विकुण्ठस्य भावं वैकुण्ठं" और 'व्यापिवैकुण्ठ' मतलब वो सब जगह मौजूद है. यासुं तुम्हारे घरमें भी नित्यलीलामें मौजूद है. तो वो सब देश सब काल में वो मौजूद है. व्यापिवैकुण्ठमें चलती लीलाकुं अपने घरमें प्रकट करनेको ये एक खेल है. शुरु करदो तो तुम भी खेल सको हो.

बस तुम्हारी इतनी भावना होनी चहिये के आ चल अपन दोनों मिलके खेलें. तु मेरो मालिक बन जा और मैं तेरो तेरो दास. अथवा तु मेरो बालक बन जा मैं तेरो तेरो पिता! बस खेल शुरु हो गयो. ये खेल तुम्हारो कपट-नाटक भी हो सके है पर तब के जब तुम ये खेल वाके सङ्ग खेलवेकेलिये नहीं खेलके तुम गामकुं दिखावेकेलिये खेल रहे होव. और यदि तुम वाके सङ्ग खेलवेकेलिये ही ये खेल खेल रहे हो तो ये तुम्हारो वाके सङ्ग लीलाविलास हो गयो. वा अमर्यादने कोई तरहकी मर्यादाएं प्रकट करी हैं. वाके सङ्ग कौनसी मर्यादामें खेलनो, ये मर्यादाएं वही हैं जा तरहकी मर्यादा क्रिकेटकी हैं. बॉल पांवमें लग गई तो लग-बिफोर आउट हो गये और वहां चली गई तो बांउड्री लग गयी! उन मर्यादानूकुं तोड़वेसुं खेल बिगड़ सके है और उनके पालनसुं खेलको आनन्द प्रकट हो सके है. बस इतनीसी बात है वासुं कोई ज्यादा गम्भीर बात नहीं है. आउट हो गयो मतलब कोई दुनियासुं आउट नहीं हो गयो. कई डोबाएं ऐसे होवे हैं के यदि तेंडूलकर आउट

हो गयो तो उनकुं हार्ट अटेक् आ जाय. उन डोबान्को इलाज नहीं है. क्योंके वो दीपक रागको विषय हैं. आदमीके अ.-म.को अनुपात्त बिगड़ जानेसुं या तरहके रसाभास भी प्रकट हो सके हैं. यासुं महाप्रभुजीने कह्यो के जा मर्यादामें ये लीलाएं प्रकट भई हैं वा मर्यादामें रहके तुम सब काम करो. मर्यादन्सुं तुम आक्रान्त मत हो जाओ "या तो मर जाईये या मार दीजीये, जो भी हो आज फैसला कीजीये". ऐसी कोई बात नहीं है. ये लीलाकी बात है.

अपने यहां प्रेम और मर्यादा को एक विवेक है. या उत्तम मार्गमें या समझ और या भावना के साथ, या अङ्गीकृतौ समर्यादः के साथ, लौकिक-वैदिककुं कापट्यसुं निभाते भये, सहज वैष्णवताकुं निभानेके साथ यदि तुम चल पाये तो "मार्गो अयं सर्वमार्गाणाम् उत्तमः परिकीर्तितः, यस्मिन् पातभयं नास्ति मोचकः सर्वथा यतः".

यही बात प्रतीक भी कह रह्यो है के "द जिस्ट् ऑफ़् ध अबाउ डिस्कशन् ... इज़ द बेस्ट पाथ अमंग द अधर्स". कृष्णमें तात्पर्य है तो भटक गये तब भी अच्छो है और तात्पर्य कृष्णमें नहीं है तो वैकुण्ठमें पहुंचके भी कोई फायदा हो नहीं सके है. कई असुर भी वैकुण्ठमें पहुंच गये हते, दुर्वासा भी पहुंच गये हते.

कृष्णमें तात्पर्य है तो बिछुड़ गये तो भी "आन्तरन्तु परं फलम्" हो जायगो. और तात्पर्य नहीं है तो यदि कृष्ण मिल भी गयो तब भी तुम पूतनाकी तरह वाकुं जहर पिवावे लगोगे. तो कृष्णके मिलजानेसुं समस्याको समाधान नहीं होयगो, यदि तात्पर्य कृष्णमें नहीं है तो. यदि तात्पर्य कृष्णमें है तो कृष्ण नहीं मिल्यो तब भी तुम्हारी समस्याको समाधान हो जायगो.

ये बात श्रीमहाप्रभुजी अपनकुं समझानो चाह रहे हैं, सहस्र

परिवत्सरसुं आज तक समझानो चाह रहे हैं. याकुं समझोगे तो महाप्रभुजीको सिद्धान्त समझमें आयगो. नहीं समझोगे तो दीपक रागतो चल ही रह्यो है और चलतो रहेगो. श्रीमहाप्रभुजी अपनकुं सामर्थ्य दें के कृष्णमें तात्पर्य कैसो होवे ये अपनकुं समझमें आवे.